संजय की कलम से ..

नारी की आध्यात्मिक श्रेष्ठता

नारी के जीवन में कुछ ऐसी विशेषताएँ होती हैं जिनके कारण वह अध्यात्म में पुरुषों से भी आगे निकल सकती है तथा समाज का चारित्रिक नव-निर्माण करने में भी विशेष रूप से कुशल सिद्ध हो सकती है। अध्यात्म में नारी को विशेषता प्रदान करने वाले कई सामाजिक, मानसिक और आर्थिक कारण हैं जिनमें से कुछेक का उल्लेख हम यहाँ कर रहे हैं –

कन्या-वृत्ति

कन्या अवस्था में नारी में बहुत-से गुण होते हैं। मनोवैज्ञानिकों ने सर्वेक्षण के आधार पर इस बात को माना है कि कन्या अथवा कुमारी, बालकों की अपेक्षा कम उच्छृंखल, कम उद्दण्ड और कम झगड़ालू होती है। वह बड़ों का कहना जल्दी मान लेती है, अनुशासन में सहज ही बँध जाती है और उसमें अंतर्मुखता तुलनाकृत अधिक होती है। स्पष्टत: ये वृत्तियाँ ईश्वरीय ज्ञान तथा योग को सीख कर दिव्यता के उत्कर्ष में बहुत ही सहायक होती हैं। कन्याओं में बालकों की अपेक्षा स्मृति, एकाग्रता तथा अपने कार्य में तत्परता भी अधिक पाई जाती है, ऐसा मनोवैज्ञानिकों द्वारा किये गये परीक्षणों से प्रमाणित होता है। अत: ईश्वरीय ज्ञान-बिन्दुओं की स्मृति, योगाभ्यास के लिए एकान्त-प्रिय स्वभाव तथा एकाग्रता में कुशलता, कन्याओं को योग में शीघ्रता से अधिक उच्च स्थिति प्राप्त करा देते हैं। कन्याओं में लज्जा, संकोच तथा भय भी बालकों की अपेक्षा अधिक होता है। अत: वे दिव्य गुणों की धारणा में, चरित्र की धारणा में तथा अमर्यादा एवं आसुरियता के त्याग के पुरुषार्थ में अधिक सुगमता से सफल हो सकती हैं।

कन्या को मालूम होता है कि एक दिन उसके माता-पिता उसे दूसरे किसी के हाथ सौंप देंगे। उसे यह भी ज्ञात होता है कि वह खाली हाथ ही है, उसका कोई नहीं है, न ही कुछ उसका है। अत: यदि इस अवस्था में कन्या में ज्ञान एवं योग का बीजारोपण किया जाये तो वह 'सौ ब्राह्मणों से उत्तम' बन सकती है। गोया कन्या-वृत्ति योग के लिए अनुकूल भूमिका उपस्थित करती है।

वधू

फिर जब उसका विवाह हो जाता है तो उसमें 'सजनी' भाव उत्पन्न होता है। यूँ तो सगाई होने के बाद ही उसके नेत्र, होने वाले वर के सिवा सभी को पर-पुरुष अथवा भाई की दृष्टि से देखते हैं परंतु विवाह के पश्चात् तो वह माथे पर बिन्दी लगा लेती है तथा

(शेष.. पृष्ठ 30 पर)

अमृत-सूची

◈ आसक्ति और प्रभाव
(सम्पादकीय) 2
◈ पुरुषोत्तम संगमयुग में.......... 5
◈ 'पत्र' संपादक के नाम......... 8
◈ प्रश्न हमारे, उत्तर आपके 9
◈ स्वर्ग का द्वार है नारी......... 11
◈ परिस्थिति - वरदान या........13
◈ लाल बत्ती वाला बाबू......... 16
◈ शिव में इसे लगा दो *(कविता)* 17
◈ तन-मन का स्वास्थ्य..........18
◈ एक आध्यात्मिक यात्रा.......20
◈ मैं क्या हूँ? *(कविता)*......... 21
◈ कुमारियों की दिव्य फुलवारी.22
◈ संसार को क्या दे रहे हैं आप.23
◈ आहार और विचार..........24
◈ पवित्रता ही सुख-शान्ति...... 25
◈ अध्यात्म की नज़र से
हनुमान जी...................26
◈ सचित्र सेवा समाचार......... 28
◈ सचित्र सेवा समाचार 32

फार्म – 4

नियम 8 के अंतर्गत अपेक्षित पत्रिका का विवरण

1. प्रकाशन : ज्ञानामृत भवन, शान्तिवन, आबू रोड (राजस्थान)-307510

2. प्रकाशनावधि : मासिक

3. मुद्रक का नाम : ब्र.कु. आत्म प्रकाश
क्या भारत का नागरिक है? हाँ
पता – उपरोक्त

4. प्रकाशक का नाम : ब्र.कु. आत्म प्रकाश
क्या भारत का नागरिक है? हाँ
पता – उपरोक्त

5. सम्पादक का नाम : ब्र.कु. आत्म प्रकाश
क्या भारत का नागरिक है? हाँ
पता – उपरोक्त

सम्पूर्ण स्वामित्व : प्रजापिता ब्र.कु.ई.वि.विद्यालय

मैं, ब्र.कु. आत्म प्रकाश, एतद् द्वारा घोषित करता हूँ कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर दिये गये विवरण सही हैं।

(ब्र.कु. आत्म प्रकाश)
सम्पादक

सम्पादकीय ..

आसक्ति और प्रभाव

आसक्ति और आवश्यकता में बहुत थोड़ा अन्तर है। दोनों की विभाजन रेखा बहुत पतली है। सूक्ष्म ज्ञान-नेत्रों से ही इस पतली रेखा को जाना-पहचाना जा सकता है। मान लीजिए, एक पक्षी आपके घर की मुंडेर पर आकर बैठा। आपके आंगन के कोने में एक फल पड़ा है। पक्षी भूखा है। इधर-उधर देख, अनुकूल मौका पाकर, फल को चोंच से खाकर वह उड़ गया। भूखे पक्षी के लिए फल आवश्यकता थी, आवश्यकता पूरी होते ही उड़ गया। अगले दिन आपने उसी स्थान पर एक और फल रखा पर एक अन्य फल को पिंजरे में डालकर भी रख दिया। पंछी पुन: आया, पिंजरे से बाहर पड़े फल को खाया पर आज उड़ा नहीं, क्यों? क्योंकि उसकी दृष्टि पिंजरे के अंदर पड़े फल में उलझ गई। पिंजरे वाले फल की उसे आवश्यकता नहीं है और उस तक आसानी से उसकी पहुँच भी नहीं है पर वह पिंजरे के आस-पास फुदक रहा है। कभी लोहे की तारों पर चोंच मारता है, कभी फल को निहारता है। आवश्यकता ना होते भी, पहुँच ना होते भी यूँ किसी चीज़ में दृष्टि को उलझा लेना ही आसक्ति है। इस प्रकार के उलझाव में समय, शक्ति नष्ट होते हैं और आत्मा लक्ष्य से भ्रमित हो अपनी सुख-शान्ति को खो देती है।

जहाँ आसक्ति है वहाँ शक्ति नष्ट हो जाती है। शक्ति नष्ट होने से आसक्ति और ज्यादा बढ़ती है। आसक्ति की स्थिति में तन किसी अन्य स्थान पर होते भी, मन उस वस्तु विशेष के चारों तरफ मंडराता रहता है। उस वस्तु, व्यक्ति या वातावरण के प्रति लगाव, उसके प्रति प्रशंसा का भाव, उसे प्राप्त करने या समीप जाने की तमन्ना बनी रहती है। तन से यदि न पा सके तो मन के संकल्पों से उसे छूकर, बुद्धि रूपी नेत्रों से उसे देखकर वह कुछ सीमा तक अपनी इच्छा पूर्ण होने का सुकून पाता है। इसमें तकलीफ भी होती है और नुकसान भी क्योंकि तन और मन बँट जाते हैं। जिन चीज़ों पर वह आसक्त है, वे भूत बनकर उसे नचाती रहती हैं। शुरू में तो यह नाचना कुछ अच्छा लगता है पर आत्म-सम्मान, आत्मनिर्भरता, आत्मविश्वास आदि सब सद्‌गुण ऐसी आसक्ति की भेंट चढ़ जाते हैं और खोखला हुआ इंसान बाद में सिर धुनता है। इसलिए कहा गया है, 'परधनम् लोष्टवत्' अर्थात् दूसरे के धन को मिट्टी का ढेला समझो और चमड़ी दूसरे की हो या अपनी, यह तो हाड़-माँस पर चढ़ा हुआ सुन्दर आवरण है। **आवरण से क्या प्रभावित होना! आचरण को परखे बिना केवल आवरण पर नज़रें अटकाना तो स्वयं को स्वयं भटकाना, लटकाना और अटकाना ही है।**

प्रभाव अर्थात् दूसरे के भाव का असर

एक दूसरी स्थिति है जिसमें व्यक्ति का न तो आकर्षण होता है, न लगाव होता है, न उसे कुछ पाने की तमन्ना रहती है पर ना चाहते हुए भी उस पर वातावरण, परिस्थिति और व्यक्ति का प्रभाव आ जाता है। ना चाहते भी प्रभाव का आ जाना आत्मा की कमज़ोरी के कारण होता है। जैसे कमज़ोर शरीर पर कीटाणुओं का वार हो जाता है, उसी प्रकार कमज़ोर मन पर वातावरण, परिस्थितियों और बातों का प्रभाव आ जाता है। प्रभाव (पर भाव) अर्थात् दूसरे के भाव का असर। ये प्रभाव इतने सूक्ष्म होते हैं जो बहुत सूक्ष्म पुरुषार्थ द्वारा ही आत्मा को इनसे बचाया जा सकता है।

कमज़ोर मन प्रभावों से और अधिक कमज़ोर

कई बार, कार्य पूरा होने के बाद भी और व्यक्ति से मिल लेने के बाद भी कार्य की सफलता-असफलता की बातें तथा व्यक्ति के व्यवहार, हाव-भाव, उससे हुए लेन-देन, उसकी

प्रतिक्रियाएँ मन में तैरती रहती हैं जैसे, गैस से उतार लेने के बाद भी उबलते पानी से भाप निकलती रहती है, उसी प्रकार कार्य, व्यक्ति और वातावरण से साकार समीपता समाप्त होने पर भी मानसिक समीपता बनी रहती है और मानसिक संकल्पों की भाप वातावरण में फैलती रहती है। इसका अर्थ यह है कि वह घटना तो पूरी हो गई पर मन पर पड़ने वाला उसका प्रभाव पूरा नहीं हुआ, वह अभी भी चालू है। इस प्रभाव से न्यारा होना बहुत ज़रूरी है क्योंकि इस भागदौड़ के जीवन में हर पल मनुष्य को नये कार्य, नये व्यक्ति और नये वातावरण से व्यवहार में आना पड़ता है। अगर पिछले प्रभाव को लेकर अगला कार्य करते हैं तो अगले के साथ हम न्याय नहीं कर पाते हैं। पिछले प्रभाव से आच्छादित बुद्धि अगले कार्य को ना तो पूरी तरह परख पाती है और ना ही उचित परिप्रेक्ष्य में समझ पाती है। प्रभावों के दबाव से कमजोर मन अगले कार्य को उतने उमंग-उत्साह से नहीं कर पाता, थका हुआ और अशक्त भी महसूस करता है, कई बार अगले कार्य को टालने का भी विचार करता है। लंबे समय तक चलने वाला प्रभाव पूर्वाग्रह में भी बदल जाता है।

परमात्मा की याद से मन को धो लीजिए

हम प्रतिदिन अनेक प्रकार के रंग और स्वाद वाली सब्ज़ियाँ और फल, चाकू से काटते हैं। एक चीज़ काट लेने के बाद चाकू को तुरंत धो देते हैं ताकि अगली कटने वाली चीज़ पर पहले काटी गई चीज़ के स्वाद का असर ना आये। अगर तीखी मिर्च काटकर चाकू को अच्छी प्रकार से धोया नहीं और उसी से सेब काट लिया तो क्या होगा? सेब में भी मिर्च जैसा तीखापन आ जायेगा और खाने वाला व्यक्ति जैसे ही टुकड़ा मुख में रखेगा, थूक देगा और चिल्लायेगा। खा रहा है सेब पर प्रतिक्रिया करता है मिर्च खाने जैसी, क्यों? क्योंकि पूर्व में काटी गई मिर्च का प्रभाव चाकू के साथ उसमें आ गया। इसलिए जिस प्रकार हर चीज़ काटने के बाद चाकू को धोना अनिवार्य है उसी प्रकार, हर कर्म करने के बाद भी मन को ईश्वरीय स्मृति से धो डालना ज़रूरी है। **कर्म करते-करते यदि ईश्वरीय स्मृति बनी रही तो इस साक्षी, न्यारी और प्यारी अवस्था में मन पर, किये हुए कर्मों का प्रभाव नहीं पड़ेगा या कम मात्रा में पड़ेगा।** परंतु कर्म करते यदि ऐसी शक्तिशाली स्मृति ना बनी रहे तो कर्म पूरा होने पर या कर्म के बीच में ईश्वर पिता की याद से मन को स्वच्छ किया जाना ज़रूरी है ताकि उसी स्वच्छ मन से अगला कार्य सुचारु रीति से किया जा सके। इसी कल्याणकारी उद्देश्य को लेकर परमप्रिय शिव बाबा ने हम बच्चों को हर घंटे में 10 से 20 मिनट तक के समय के लिए दो प्रकार की रूहानी ड्रिल करने की श्रीमत दी है। एक ड्रिल है अपने को आत्मा समझ, अपने निराकारी वतन में अनादि स्वरूप की अनुभूति में टिकना और दूसरी ड्रिल है, हाड़-माँस की देह से न्यारा हो, लाइट के आकारी शरीर द्वारा विश्व को सुख, शान्ति, शक्ति, प्रेम आदि श्रेष्ठ भावों का सकाश देना। इसके पीछे भाव यही है कि कर्म करते भी आत्मा सांसारिक आसक्तियों, प्रभावों और पुराने संस्कारों के बंधन से मुक्त रहे। जीवन में रहते भी जीवनमुक्ति का आनन्द ले।

हो सकता है ग़लत भाव का आरोपण

मान लीजिए, कोई क्रोधी, चिड़चिड़ा और ईर्ष्यालु व्यक्ति हमसे बहस करके चला गया। अब हम उसके द्वारा दिये गये गलत-ठीक तर्कों और अपने द्वारा दिये गये उत्तरों के चिंतन में हैं। उसकी सूरत, उसके बोल, उसके हाव-भाव हमारी बुद्धि रूपी स्क्रीन पर नाच रहे हैं। उसके जाने के बाद भी हम मन से व्यस्त हैं लेकिन अन्य व्यक्ति को अकेले बैठे दिखाई देते हैं। हमें अकेला और फ़ुरसत में देख कोई संत प्रवृत्ति का व्यक्ति हमसे मिलने आ जाये तो क्या होगा? हम इस संत प्रवृत्ति के व्यक्ति पर भी पहले वाले जैसा व्यक्ति होने

का भाव आरोपित कर उससे लाभ नहीं उठा पायेंगे बल्कि पिछले व्यक्ति के साथ किये गये तर्कों और भावों को लेकर उससे पेश आयेंगे। ऐसे में कई बार हँसी और ग्लानि का पात्र भी बनना पड़ता है। व्यक्ति, वातावरण या कार्य से उत्पन्न विचारों को परमात्मा को अर्पित कर देना ही मन को धो लेना है। ऐसा करने से बीते क्षणों के चिन्तन से मुक्त हो हम वर्तमान के साथ न्याय कर पाते हैं।

उच्च विचार रखते हैं मन को तरोताजा

कई बार कार्य के समाप्त होने पर हम लाइट रिफ्रेशमेन्ट (हलका खान-पान) लेते हैं। इससे शरीर को तो शक्ति मिलती है लेकिन कार्य के दौरान केवल शारीरिक शक्ति का ही ह्रास नहीं हुआ बल्कि मन की शक्ति भी तो लगी, उसकी भरपाई किसी पेय पदार्थ या खाद्य पदार्थ से नहीं हो सकती। मन तक पहुँच सकने में सक्षम कुछ उच्च विचार पढ़े जायें, कुछ सकारात्मक दृश्य देखे जायें या सशक्त बनाने वाली बातें सुनी जायें तो मन की खर्च हुई शक्ति की भरपाई हो सकती है। बापू गांधी जी ने लिखा है, 'मैं बीच-बीच में गीता पढ़कर मन को तरोताज़ा रखता हूँ।' वे राम नाम की स्मृति को सर्वोत्तम रिफ्रेशमेन्ट मानते थे। **जगत के बापू परमपिता शिव ने भी मन की खर्च हुई शक्ति को पुन: भरने के लिए हर घंटे के लिए जो ड्रिल बताई है, वह भी वास्तव में मन के लिए लाइट रिफ्रेशमेन्ट ही है। इसका लाभ कहीं भी, कोई भी उठा सकता है।**

कर्म से नहीं, कर्म के बोझ से मुक्ति

पौधारोपण या खरपतवार उखाड़ने की क्रिया में खुरपे (एक औजार) पर मिट्टी लगती जाती है। धीरे-धीरे मिट्टी की परत मोटी होती जाती है फिर खुदाई में बाधा पड़ने लगती है तो माली हाथ से मिट्टी हटाकर खुरपे को साफ करता है और खुदाई की प्रक्रिया पुन: निर्विघ्न रूप से चल पड़ती है। खुरपा चूंकि मिट्टी में काम करता है तो उस पर मिट्टी का आवरण चढ़ता है और मानव जिन लोगों के साथ काम करता है, उसके मन पर उनकी क्रियाओं का आवरण (असर) आता है। खुरपे की मिट्टी उसका माली पोंछता है और मानव मन के ऊपर लगे प्रभावों को प्रभु दूर कर देता है बशर्ते कि मन उसे सौंप दिया जाये। मानव निर्मित औज़ार भी अपने-अपने कार्य में संलग्न हैं तो स्वयं मानव कर्म से कैसे छूट सकता है? हाँ, वह कर्मों के बोझ से छूट सकता है। मन को भारी करने से छूट सकता है, मन से नहीं। निराशा, आलस्य, हठ, चिंता, अधैर्य, दुविधा, घबराहट, उत्तेजना, अस्थिरता इत्यादि से छूट सकता है। इसलिए बीच-बीच में ईश्वरीय स्मृति का अभ्यास आवश्यक है।

ईश्वरीय याद अर्थात् ईश्वरीय सुरक्षा

ईश्वरीय याद का अर्थ है ईश्वर की सुरक्षा में आना। इसलिए कहा जाता है, *Man is not merely creature but creator of his environment*. व्यक्ति वातावरण का गुलाम नहीं लेकिन उसका रचयिता है। वह व्यक्ति, वस्तु या वातावरण के वश होने के बजाय इनको वश में कर सकता है। वह विपरीत परिस्थितियों में भी आनन्दित, एकरस, सकारात्मक, निर्णायक, धैर्यवान रह सकता है। इसलिए परमपिता परमात्मा शिव भी कहते हैं, **संस्कारों के अधीन नहीं होना, किसी के स्नेह के अधीन नहीं होना, वायुमण्डल के अधीन भी नहीं होना। मजबूर नहीं होना लेकिन मज़बूत होना है। मन की निर्बलता के कारण संगदोष में भी नहीं आना। किसी की कम्प्लेन्ट करने के बजाय कम्पलीट होना है लेकिन ऐसा तब होगा जब मन एक (परमपिता परमात्मा) भरोसे, एक की मत पर और एक पर पूर्ण निश्चयबुद्धि होगा।**

– ब्र.कु. आत्म प्रकाश

मन को वश करने का तात्पर्य है कि मन में केवल वही संकल्प उठे जो मनुष्य को सद्मार्ग पर ले जायें।

पुरुषोत्तम संगमयुग में ईश्वरीय चुनाव की पद्धति

• ब्रह्माकुमार रमेश शाह, गामदेवी (मुंबई)

भक्ति मार्ग में तो हम सब भगवान के लिए गाते रहे कि तुमरी गत-मत तुम ही जानो अर्थात् भगवान के कर्त्तव्यों को भक्ति मार्ग में हम आत्मायें पहचान नहीं सकती थी परंतु अभी ईश्वरीय ज्ञान के आधार पर शिव पिता परमात्मा हमें अपना सारा ही भेद बता देते हैं। वर्तमान समय शिव बाबा हम बच्चों को सतयुग और त्रेतायुग के राज्य कारोबार के कुशल संचालन सहित अर्थव्यवस्था, सामाजिक व्यवस्था आदि सबका ज्ञान दे रहे हैं। सतयुगी दैवी राज्य कारोबार करने के निमित्त हम किसको चुनें, वह पद्धति भी हमें शिव पिता परमात्मा समझा रहे हैं। शिव पिता की चुनाव पद्धति समझने के लिए हमें आज की दुनिया की शासन पद्धति अर्थात् चुनाव पद्धति समझनी होगी। भारत में सन् 1950 में गणतंत्र की स्थापना हुई परंतु दुनिया के अन्य कई देशों में तो 400-500 वर्ष पहले से ही गणतंत्र की स्थापना हुई है अत: पहले हम वर्तमान लोकशाही चुनाव पद्धति को समझने की कोशिश करेंगे।

आज के युग में, राज्य-अधिकार प्राप्त करने का साधन है चुनाव में बहुमत। बहुमत प्राप्त पक्ष के प्रतिनिधियों द्वारा चुना हुआ नेता राजसंचालन का अधिकारी बनता है। फिर वह नेता चुने हुए प्रतिनिधियों में से कुछेक को मंत्रीमंडल में शामिल करके राज्य कारोबार चलाता है।

मताधिकार प्राप्त मतदाता अपने प्रतिनिधि चुनते हैं। इस पद्धति द्वारा लगभग सभी देशों में राज्य अधिकारी चुना जाता है। कई देशों में यह चुनाव सचमुच निष्पक्ष भाव से होता है तो कई बार चुनाव का नाटक किया जाता है। जैसे रशिया में पहले ज़माने में, एक ही प्रतिनिधि चुनाव में खड़ा रहता था और सभी नागरिकों को सार्वजनिक रूप में जाकर मतदान करके उसे चुनने का नाटक करना पड़ता था। इस पद्धति को तानाशाही पद्धति कहते थे। इस प्रकार तानाशाही को भी लोकतंत्र के रूप में सजाकर यह सत्ताधीश अपने आप को दुनिया के सामने जनता के प्रतिनिधि के रूप में प्रसिद्ध करता था।

वर्तमान समय विश्व के 32 देशों में चुनाव के समय मतदान करना अनिवार्य है। उनमें से 13 देशों में मतदान नहीं करने वालों को सज़ा देने का प्रावधान है।

सन् 1911 में आस्ट्रेलिया में मतदान नहीं करने वालों को अनेक प्रकार की सजायें देने की प्रथा शुरू हुई। मिसाल के तौर पर एक देश में मतदान नहीं करने वालों को जेल की सज़ा होती है तो बोलिविया जैसे देश में मतदान करने वालों को स्टेम्प लगा हुआ कार्ड मिलता है और नहीं करने वालों को तीन मास तक सरकार से प्राप्त होने वाले लाभों से वंचित रखा जाता है और वे व्यक्ति सरकारी दुकानों से जीवन की ज़रूरत की चीज़ें नहीं खरीद सकते हैं। भारत में हर पाँच वर्ष के बाद मतदान होता है। कई बार चुने हुए प्रतिनिधियों के बीच विचारभेद के कारण पाँच साल के बदले जल्दी-जल्दी चुनाव भी करने पड़ते हैं। जैसे एक बार ढाई वर्ष के बाद ही चुनाव करना पड़ा तथा दूसरी बार 13 दिन में फिर से चुनाव करना पड़ा। चुनाव की प्रक्रिया महंगी भी है। भारत में एक केन्द्रीय सरकार के चुनाव के पीछे अंदाजन 900 करोड़ रुपये का खर्चा होता है। कई जगह चुनाव में भी बंदूक आदि के द्वारा सख्ताई करके लोग घुस जाते हैं और झूठा मतदान करके आते हैं। इस प्रक्रिया को अंग्रेजी में Booth Capturing कहते हैं। इस बार Chartered Accountant Institute के जो चुनाव हुए, उसमें भी एक स्थान पर Booth Capturing हुई। यह तामसी पद्धति गाँवों में क्या, शिक्षित समुदाय के बीच भी होती है, यह करुण वास्तविकता

है। फिर भी सरकार प्रयत्न करती है कि जितना हो सके, उतना निष्पक्ष रूप में समस्या रहित चुनाव हो। इसी साल गुजरात सरकार ने भी चुनाव में मतदान करना अनिवार्य करने का सोचा है। चुनाव अधिकारी तथा केन्द्र सरकार की सम्मति मिलने के बाद यह संभव हो सकेगा।

स्थूल चुनाव पद्धति में खड़े होने वालों के गुणधर्म या नीतिविषयक बातों पर कुछ खास ध्यान नहीं दिया जाता। कई बार तो ऐसे लोग भी चुनकर आते हैं जिनके ऊपर कत्ल या डकैती आदि के इल्ज़ाम लगे होते हैं। एक समय भारत के विविध प्रदेशों में करीब 125 सांसद ऐसे थे जिन पर पुलिस केस चल रहा था और 4 सांसद तो जेल में से आकर संसद में मतदान करते थे।

शिवबाबा ने हम बच्चों के लिए जिस दैवी परिवार की रचना की है, उसमें भी चुनाव पद्धति रखी हुई है। हम सब ईश्वरीय चुनाव पद्धति में मतदाता भी हैं तो प्रतिनिधि भी हैं। शिवबाबा कहते हैं कि बच्चे, मैं सतयुगी राजधानी में विश्व महाराजा, विश्व महारानी, शाही राजपरिवार, साहूकार और प्रजा आदि के लिए चुनाव करा रहा हूँ। ईश्वरीय चुनाव पद्धति में तीन बातें मुख्य हैं जिसके आधार पर प्रतिनिधि चुने जाते हैं – 1.स्वपसंद 2.लोकपसंद 3.प्रभुपसंद

स्वपसंद – हम सबका अपना-अपना स्व का राज्य कारोबार है जिसमें आत्मा राजा बनकर अपनी इंद्रियों रूपी कर्मचारियों का राजदरबार आयोजित करती है और अपने ऊपर अपना राज्य कहाँ तक सुचारु रूप में चलता है उसके आधार पर स्वपसंद की बात तय होती है। शिव बाबा कहते हैं कि जिनका अपने ऊपर ही राज्य नहीं चलता अर्थात् जो अपनी कर्मेन्द्रियों के ही मालिक नहीं, वे अन्यों के संचालन के कार्य में कैसे सफल होंगे। हम आत्म-निरीक्षण द्वारा यह तय करते हैं कि इस ईश्वरीय चुनाव पद्धति में प्रतिनिधि के रूप में खड़े होने के लिए हम योग्य हैं या नहीं। शिवबाबा को यह चुनाव पद्धतिइसलिए अपनानी पड़ती है क्योंकि इसके द्वारा ही ऐसे प्रतिनिधियों की नियुक्ति करनी है जो सतयुग और त्रेतायुग में 2500 वर्षों तक राज्य कारोबार को अटल, अखंड और निर्विघ्न रूप में चला सकें। तो इस ईश्वरीय चुनाव में सबसे पहली शर्त है स्वपसंद की अर्थात् वह स्वराज्य अधिकारी हो।

लोक पसंद – लोकपसंद की बात भी इतनी ही ज़रूरी है। जैसे भारत के संविधान के मुताबिक राज्य स्तर के चुनाव अलग होते हैं और केन्द्र सरकार के चुनाव अलग होते हैं। इसी प्रकार ईश्वरीय परिवार में भी ज़ोन और मुख्यालय हैं। मुख्यालय अर्थात् मधुबन का संचालन करने वाला व्यक्ति, अपने साथियों के रूप में, विभिन्न विभागों के निमित्त मुखियाओं को चुनकर उनके द्वारा यज्ञ का कुशल संचालन करता है, साथ-साथ, ईश्वरीय सेवाओं द्वारा नये-नये सेवाकेन्द्रों की स्थापना कर इस ईश्वरीय परिवार की वृद्धि भी कराता है। मिसाल के तौर पर शिव बाबा ने दादी प्रकाशमणि के बारे में कहा कि ब्रह्मा बाबा ने स्थापना के आरंभ सन् 1937 से सन् 1969 तक अर्थात् लगभग 32 वर्षों तक इस ईश्वरीय परिवार का नेतृत्व किया किंतु दादी प्रकाशमणि ने सन् 1969 से सन् 2007 तक अर्थात् लगभग 38 वर्षों तक इसका कुशल संचालन लोकपसंदगी के आधार पर किया। मैंने पहले भी एक लेख में हँसी-हँसी में लिखा था कि अगर दैवी परिवार के अंदर भी चुनाव होता है और एक तरफ दादी प्रकाशमणि चुनाव में खड़ी होती हैं और दूसरी ओर मेरे जैसा कोई प्रतिनिधि के रूप में खड़ा होता है तो दादी प्रकाशमणि को ही या दादी जानकी को ही शतप्रतिशत वोट मिलेंगे और मैं भी अपना वोट अपने को न देते हुए ऐसी हमारी दादियों को दूँगा अर्थात् लोकपसंदगी का क्षेत्र बहुत विशाल है। ईश्वरीय कानून और ईश्वरीय स्नेह के बीच में बहुत

सुन्दर रीति से संतुलन करके इस ईश्वरीय परिवार को चलाना, यह बहुत गुह्य बात है। इसलिए हम सबको यह ध्यान रखने की ज़रूरत है कि हम इस ईश्वरीय चुनाव के अंदर कहाँ तक लोकपसंदगी के क्षेत्र में सबके दिलों की आवाज़ और उनके सकारात्मक सहयोग द्वारा ईश्वरीय परिवार का कुशल संचालन करते हैं।

प्रभु पसंद – प्रभु पसंद की बात भी इतनी ही गुह्य है। मैंने आदरणीय ब्रह्मा बाबा को पूछा था कि बाबा, स्वपसंद और लोकपसंद की बात तो ठीक है पर आप भी क्यों परीक्षा लेते हो? माया की परीक्षायें तो हम बहुत देते हैं पर प्रभु की परीक्षा और प्रभु की पसंदगी भी इतनी जरूरी आपने क्यों बनाई? तब बाबा ने कहा था कि बच्चे, आप बाज़ार से साधारण एक मटका भी खरीदने जाते हैं तो भी उसको ठक-ठक करके देखते हैं कि कोई सुराख तो नहीं है। एक मटका खरीदने के समय भी आप इतना ध्यान रखते हो तो मुझे तो आने वाले दो युगों के लिए सुचारु रूप से कार्य करने वालों को चुनना है। सतयुग-त्रेतायुग में तो मैं उपस्थित रहूँगा नहीं और आप बच्चों को ही अपना राज्य कारोबार 2500 वर्षों तक निर्विघ्न रूप में चलाना है तो ऐसी ज़िम्मेवारी के लायक आत्माओं को चुनने का कारोबार मुझे भी करना ही पड़ता है।

इस प्रभुपसंदगी के कारोबार में कई गुप्त बातें भी आती हैं। मनमनाभव के फलस्वरूप मन के विचारों, मन की भावनाओं और मन के स्पंदनों को भी शुद्ध और पवित्र कहाँ तक बनाया है, यह बात तो परमात्मा ही समझ सकता है। कई ऐसे कर्म होते हैं जो कइयों के मन में गुप्त रूप में होते है और उनका प्रभाव और प्रवाह फैलता ही रहता है उसे केवल परमात्मा ही जान सकते हैं।

बाबा ने एक बार साकार मुरली में भी कहा था कि वर्तमान में जो बाप के दिल रूपी सिंहासन पर बैठने के लायक बनेगा वो ही सतयुग के राज्यसिंहासन पर बैठने के निमित्त बनेगा। तब मैंने बाबा से पूछा था कि आपके दिल रूपी सिंहासन पर बैठने का सहज तरीका क्या है? बाबा ने बताया था कि ईश्वरीय सेवा के आधार पर मेरे दिल रूपी सिंहासन पर आप बच्चे बैठने के लायक बन सकते हैं। किस प्रकार से सेवा करते ऊँची स्थिति में रहते हैं, ईश्वरीय नियमों के ऊपर कहाँ तक चलते हैं, इन सभी बातों का मैं निरीक्षण करता हूँ। मर्यादा पुरुषोत्तम अर्थात् उत्तम पुरुष होते भी मर्यादा रूपी लक्ष्मण रेखा के बीच में रहकर हम कहाँ तक सेवा करते हैं, इस आधार पर ही यह प्रभु पसंदगी का अंतिम पेपर या चुनाव होगा।

ऊपर बताये गये तीनों मापदंडों के आधार पर जो ईश्वरीय चुनाव संगम पर होता है, उसकी दिव्यता और महानता को समझें और अपने को इस चुनाव पद्धति के अंदर राज्य कारोबार करने के लिए निमित्त बनायें, यही हम सबके सामने बड़ी भारी चुनौती है। मैं हमेशा मानता हूँ कि ईश्वरीय ज्ञान के ज्ञान, योग, धारणा, सेवा – इन चार विषयों के साथ-साथ पाँचवां विषय है, मैनेजमेंट कारोबार। इस पाँचवें विषय में भी हम सबको पास विद ऑनर होना है तब हम सतयुग और त्रेतायुग के राज्य कारोबार में चुनकर नई सृष्टि में जायेंगे। इसलिए हम सब अपने को आने वाले भविष्य के रचयिता और पुरुषार्थी समझकर कारोबार करें और हमारे में से ही कई, सतयुग और त्रेता में विविध रूप से राज्य कारोबार करने के निमित्त बनेंगे, यह वास्तविकता है। जैसा कि ब्रह्मा बाबा ने कहा है, अंत के समय में सब बातें इस दैवी परिवार के अंदर शीश महल के मुआफिक प्रत्यक्ष हो जायेंगी और रिज़ल्ट भी बहुत करके अंत समय सबको मालूम पड़ जायेगा कि हम कहाँ तक चुने गये हैं और कहाँ तक लायक बने हैं तो ऐसा सतयुगी और त्रेतायुगी राज्य कारोबार का श्रेष्ठ भाग्य बनाने में सभी सफल रहें, इसी शुभभावना के आधार पर इस ईश्वरीय चुनाव पद्धति के बारे में यह लेख लिखा है। ❖

‘पत्र’ संपादक के नाम

नवंबर 09 अंक में ‘पवित्रता’ लेख पढ़ा, मन-बुद्धि के द्वारा आत्मा को जैसे कोई अमृत मिला। हम गद्‌गद हो गये और दिल से निकला, वाह मेरे बाबा वाह, आपने कैसे महारथी बच्चों को तैयार करके पालना के निमित्त बनाया है। बापदादा के साथ-साथ लेखक भाई का तहे दिल से शुक्रिया! आप ऐसे लेख लिखकर हम ब्रह्मावत्सों को आगे बढ़ायें! दिसंबर 2009 अंक में ‘दोषी कौन’ लेख पढ़ा, आशा उत्पन्न हुई कि ऐसे लेख पढ़ने से कई नौजवान भाई-बहनों का चिन्तन अवश्य बदलेगा। इससे आज की युवा पीढ़ी पर अवश्य ही असर पड़ेगा। लेखिका बहन को मुबारक!

– हरीनारायण,
जयपुर (वैशाली नगर)

नवंबर 09 अंक में ‘सरलता प्रभु को बहुत प्रिय है’ पढ़ा। इसमें सच्चे बाबा को प्यार करने वालों को सीख दी गई है कि कपटी, छली मनुष्य से परमात्मा शिव व पूरी मनुष्य जाति दूरी बनाये रहती है।

– विष्णु, जयपुर

नवंबर 09 अंक में ‘विश्व रत्न हैं दादी जानकी’ पढ़कर बेहद खुशी हुई। दादी जी 93 वर्ष की आयु में भी अनवरत पुरुषार्थरत हैं। दादी ने सदा स्वयं की संभाल रखी, किसी अन्य के संग का रंग इन पर नहीं लगा, अपना रूहानी रंग सबको लगाया। पथभ्रष्ट, अशांत, पीड़ित मानवता की सेवा दादी जी अथक होकर करते हैं। ‘श्रेष्ठ भाग्य की कहानी’ लेख पढ़कर पुरुषार्थ की गति तीव्र हुई। लेखक को धन्यवाद और नमस्ते!

– ब्र.कु. रंजन, आनन्दपुर

नवंबर 2009 के संपादकीय ‘शरीर आत्मा का वस्त्र है’ को पढ़ने से बहुत जानकारी मिली। ‘गहरा गोता’ लेख बड़ा शिक्षाप्रद है। ‘व्यसनों का ज़हर-ढाये कहर’ लेख दिल को छू लेता है और व्यसनों को छूमंतर कर देता है।

– ब्र.कु. लक्ष्मीनारायण,
बुरला, संबलपुर

दिसंबर 2009 अंक में प्रकाशित लेख ‘बलि किसकी’ से बहुत प्रभावित हुआ। आज भी लोग अंधविश्वास पर जी रहे हैं। लोगों में यह अंधश्रद्धा है कि बलि देने से देवी प्रसन्न होती है। क्या माँ की प्रसन्नता किसी का खून बहने से हो सकती है? देवी तो सभी की माँ है। किसी को दुख देना अच्छी बात नहीं है।

– ब्र.कु. रवि कुमार ध्रुव,
गंडई-पंडरिया (छ.ग.)

‘सिम बनाम सोल’ दिसंबर 2009 के अंक में पढ़ा, बहुत ही अच्छे ढंग से प्रस्तुत किया गया जो बदलते परिवेश में अपनी आत्मा में हो रहे परिवर्तन को समझने में सहायक है। लेख बहुत ही सराहनीय है। अज्ञान अंधेरे में भटकती हुई आत्माओं को जगाने के निमित्त बन परमात्मा से कनेक्शन जोड़ने में सहायक होगा। लेखक को धन्यवाद!

– ब्र.कु. आर.एल.वर्मा, टोंक

‘ज्ञानामृत’ सचमुच ज्ञान से लबालब भरा हुआ कलश है। अव्यक्त मास का अंक अनुभवों के रत्नों से भरे हुए गुलदस्ते समान था। आदरणीया दादी जानकी जी के उत्तर अंत:स्थल में आनंद-हिलोरें उठा देते हैं। ‘मुहब्बत में मेहनत नहीं’ लेख बड़ा अच्छा लगा। ‘याद आते हैं वे दिन’ सूर्य भाई जी के अनुभव आबू की सैर कराते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि हम भी वहाँ उपस्थित थे। वास्तव में ‘ज्ञानामृत’ उदारता, परिवर्तनशीलता का सागर है।

– ब्र.कु. बाबू भाई, चिटगुप्पा

मन ही मन भगवान के अपार गुणों को चिन्तन करने से सांसारिक व्यवहारों की चिन्ता खत्म हो जाती है

प्रश्न हमारे, उत्तर आपके

दिव्यबुद्धि के वरदान से विभूषित आदरणीया दादी जानकी जी, हर प्रकार के प्रश्नों के उत्तर देकर आत्मा को संतोष से भर देती हैं। बुद्धिवानों की बुद्धि बाबा ने उन्हें ऐसी कला प्रदान की है कि वे उलझे कर्मों की गुत्थियाँ सुलझाकर समाधानस्वरूप बना देती हैं। प्रस्तुत हैं भाई-बहनों द्वारा पूछे गए प्रश्नों के दादी जानकी द्वारा दिये गये उत्तर ... – सम्पादक

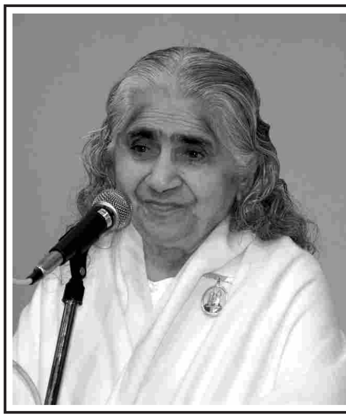

प्रश्न : अशुद्ध कर्म कहाँ से शुरू हुए?

उत्तर : जब मनुष्य देह-अभिमान में आया तो अशुद्ध कर्म शुरू हुए। जब देही अभिमानी बन जाते हैं तो अशुद्ध कर्म हो नहीं सकते। बुरा संग मिलने से बुरे कर्म हो जाते हैं और जब भगवान से दूर हो जाते हैं तो बुद्धि ठीक काम नहीं करती इसलिए भी बुरे कर्म हो जाते हैं।

प्रश्न : रिइनकारनेशन थेरेपी में मनुष्य को बताया जाता है कि जो कुछ भी उसके मन में विचार या भावनाएँ हैं, उन्हें बोलते जायें तो जो कुछ पूर्व जन्मों में किया है, उसका प्रायश्चित भी हो जाता है और इलाज भी हो जाता है, उसके बाद उलझन भी खत्म हो जाती है। तो अगर ट्रीटमेंट हो जाती है तो क्या उनके कर्मों का एकाउंट सेटल हो गया या कर्मों का हिसाब अभी भी रहता है?

उत्तर : अनुभव के आधार पर यही कहेंगे कि इस ट्रीटमेंट के द्वारा अंदर में जो भरा था, वह निकला। दिल, दिमाग हलका हो जाता है पर वास्तव में तो इसका निवारण ज्ञान-योग ही है जिससे समझ मिलती है, उस समझ के आधार पर कर्म करते हैं तो वही सच्ची ट्रीटमेंट हो जाती है।

प्रश्न : स्त्री-पुरुष के संबंध में अगर दुख मिल रहा है, जब एक से नहीं बनती तो दूसरे से संबंध जोड़ते हैं, इस आशा से कि इसमें हमें सुख मिलेगा तो क्या समझें, क्या पिछले कर्म हमें बार-बार उस संबंध में लाते हैं या और कोई कारण है?

उत्तर : यह एक फैशन बन गया है जल्दी संबंध को चेंज करना। सहनशीलता की कमी है, समझ की कमी है। आजकल समझते हैं कि एक संबंध को छोड़ेंगे तो दूसरे में सुख मिलेगा। ना मिला है, ना मिलेगा। एक बहन ने बहुत सुंदर अनुभव सुनाया, अगर अभी मैं शरीर छोड़कर दूसरे स्थान पर या दूसरे देश में चली जाऊँ लेकिन अपना स्वभाव-संस्कार तो छोड़कर नहीं जा सकती ना। दूसरे देश में जाने से कोई स्वभाव-संस्कार चेंज नहीं होगा, दूसरे संबंध में जाने से भी वह नहीं होगा। अगर कोई विकारवश संबंध छोड़ भी देता है तो वह विकार तो उसके साथ जाता ही है। भले कोई घर छोड़कर हिमालय में जाकर बैठ जाये पर अंदर का मोह या विकार तो साथ जायेगा। ज्ञान-योग एक समझ देता है, संबंध को नहीं तोड़ो। लेकिन उसमें जो आशा, तृष्णा, ममता है उसे तोड़ो। किसी से ना बनी उससे तोड़ा, दूसरे से जोड़ा, इससे अपनी क्वालिटी अधीनता की बना देते हैं। किसी को धोखा दिया। एक बेचारे बच्चे रो रहे हैं, पत्नी रो रही है, दुखी हो रही है, दूसरे से संबंध जोड़ रहे हैं तो बहुत खराब कर्मों का हिसाब-किताब बनेगा। अपनी इच्छा पूर्ण करने के लिए किसी को धोखा देकर अन्य से संबंध जोड़ देना – आजकल संसार में ज्यादा दुख-अशांति का कारण यह है। पुराने ज़माने में इतनी दुख-अशांति नहीं थी जितनी आज है। किसी को बाप है पर बाप बराबर नहीं है। माँ जिंदा है पर माँ

बराबर नहीं है। यह कड़ा कर्मों का हिसाब-किताब है। अब यह नहीं करना है। जो ड्यूटी हमारी है, जिसके साथ हमारा संबंध है, उसके साथ हमारे संबंध में सत्यता और पवित्रता आ जाये तो बहुत सुखी हैं। बड़ा अच्छा लगेगा, कइयों के मिसाल हमारे पास हैं, संबंध में सत्यता आ गई, स्वार्थ का संबंध नहीं रहा, संबंधों में अलौकिकता और सच्चाई आ गई। हम सच्चा संबंध जोड़कर अपनी फर्ज़ अदायगी को पूरा करेंगे, स्वार्थवश नहीं करेंगे।

प्रश्न : जब हमारे कर्मों का लेखा-जोखा ऊपर (भगवान के पास) होगा, तब क्या हमें यह कहने का मौका मिलेगा कि यह गलत कर्म हमने नहीं किया था?

उत्तर : जब हमें पूरा ज्ञान परमात्मा का और कर्मों का आ जाता है तो हम अच्छे कर्म करते हैं फिर भगवान का डर निकल जाता है। जैसे जज का बेटा है, जानता है कि यह कर्म नहीं करना चाहिए तो बाप से डरता नहीं है बल्कि उसके आगे निर्भय होकर खड़ा हो जाता है। जब अपने कर्मों पर हमारा ध्यान है, फिर परमात्मा के सामने खड़े होने का मौका आता है तो हमें पता रहता है कि हमने क्या किया है। कोई भी इंसान अपने आप से अपने कर्मों को नहीं छिपा सकता, इंसानों से छिपा सकता है, गुरुओं से भी छिपा सकता है। भगवान से भले ही छिपाने की कोशिश करे लेकिन खुद से नहीं छिपा सकता। अपने आप पता चलता है कि यह कर्म मैंने सचमुच किया है। बहुत समय से अगर हम कर्मों के प्रति सावधान हैं तो जो गलत कर्म किये होते हैं, उन्हें भी हम मिटा सकते हैं। जैसे कैसेट होती है, मान लो उसमें आवाज ठीक नहीं भरी तो ध्यानपूर्वक दुबारा भरते हैं और पहले वाला अपने आप मिट जाता है। जो कर्म मुझे, दुनिया को और भगवान को भी अच्छे नहीं लगते, उनके लिए विवेक कहता है कि शांति में बैठो, उनको मिटाओ। एकांत में बैठें तो अपने ही कर्मों का अनुभव होता है कि मैंने किया है जिस कारण भगवान के सामने जाने में मन खाता है। औरों के सामने भी मैं अच्छा मिसाल नहीं बन सकती हूँ। ज्ञान से समझ मिलती है, योग से शक्ति मिलती है फिर अच्छा कर्म करेंगे तो पुराना मिट जायेगा। फिर भगवान के सामने जायेंगे तो मुस्कराकर कहेगा, बच्चे, पास हो जाओ। बड़ी बात नहीं है। भगवान के सामने जाने पर जो कर्म दिखाई पड़ते हैं तो महसूस होता है कि बरोबर यह जुल्म मैंने किया है तो मुझे भोगना ही पड़ेगा इसलिए पहले ही हम तैयारी करते हैं। अभी भी मैं मेडिटेशन में बैठती हूँ तो अंत घड़ी को याद करती हूँ कि भगवान के सामने मेरी आँखें नीची न हों। पहले से ही क्यों न माफी ले लें।

प्रश्न : जब हम फ्रेश होते हैं तो मन की एकाग्रता, मेडिटेशन और विचार सागर मंथन करना सहज लगता है। परंतु थकावट और दबाव के समय पर यह सहज नहीं लगता है। मेरा अनुभव है कि मंत्र के प्रयोग से तनाव भी कम होता है और मन भी शांत हो जाता है। क्या यह सत्य है?

उत्तर : पहले जब मंत्र का प्रयोग करते थे तो थोड़ी देर के लिए उसके आधार पर शांत हो जाते थे। जब ज्ञान मंथन का अभ्यास पड़ता है तो प्रेशर हट जाना चाहिए। प्रेशर किससे पड़ा है? क्या किसी के साथ से हुआ या मेरी फालतू सोच के कारण हुआ? या मेरी शक्ति से अधिक काम मेरे ऊपर आ पड़ा है? कारण को अच्छी तरह से समझना है, नहीं तो प्रेशर में रहने की भी आदत पड़ जाती है। जब प्रेशर ऊँचा-नीचा हो जाता है तो मूड भी बिगड़ता है, कभी काम में रुचि होगी, कभी नहीं। लक्ष्य यह होना चाहिए कि ज्ञान-योग से मैं सदा अथक रहूँ, फ्रेश रहूँ, टेंशन फ्री रहूँ, उसमें परमात्मा बाप की याद भी मदद करती है। सहनशक्ति बढ़ाऊँ, बात को समेटने की शक्ति रखूँ। कोई छोटी बात को सोचकर बड़ा न बनाऊँ। बड़ी को छोटा बना दूँ तो मैं सदा फ्रेश रह सकती हूँ, अथक बन सकती हूँ।

❖

महिला दिवस पर विशेष..

स्वर्ग का द्वार है नारी

• ब्रह्माकुमारी उर्मिला, शान्तिवन

कहा जाता है कि माता का स्वभाव प्रकृति के अधिक अनुकूल तथा श्रेष्ठ स्तर का होता है। शारीरिक बल से अपेक्षाकृत कम होते भी गुणों में पुरुष से कई गुणा आगे है। करुणा, दया, सेवा, कोमलता, समर्पण, श्रद्धा, पवित्रता, हमदर्दी, कर्त्तव्यपरायणता, सत्यता, दिव्यता, संतुष्टता आदि सभी अच्छे गुण उसमें स्वाभाविक मौजूद होते हैं इसलिए ये सभी गुण भी स्त्रैण माने जाते हैं। पुरुष में भी इन गुणों का उद्भव अपनी माता की संगति से ही होता है।

वेदों में माता को पूज्या, स्तुति योग्य और आह्वान योग्य माना गया है। यक्ष-युधिष्ठिर संवाद में 'भूमि से भारी कौन' प्रश्न के उत्तर में युधिष्ठिर ने 'माता गुरुतरा भूमेः' अर्थात् माता को भूमि से भी भारी कहकर माता को सम्मानित किया है। मनुस्मृति (2/145) में कहा गया है, ''सहस्त्रंतु पितृन्मात गौरवेणाति रिच्यते'' अर्थात् माता का दर्जा पिता से हज़ार गुणा अधिक गौरवमय है।

आदि शंकराचार्य कहते हैं, कुपुत्रो जायेत कवचिदपि कुमाता न भवति' अर्थात् पुत्र तो कुपुत्र हो सकता है पर माता कभी कुमाता नहीं हो सकती। तैत्तिरियोपनिषद् 'मातृ देवो भव' का उद्घोष करता है और यादगार शास्त्र रामायण में 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' कहकर जननी और जन्मभूमि को स्वर्ग से भी बढ़कर माना गया है। हजरत मुहम्मद साहब ने एक हदीस में फरमाया है कि 'जन्नत माँ के कदमों के नीचे है।' कहते हैं कि एक बार एक व्यक्ति ने हजरत मुहम्मद साहब से पूछा, इंसानों में मेरे अच्छे बर्ताव का सबसे ज़्यादा हकदार कौन है? मुहम्मद साहब ने जवाब दिया, 'तेरी माँ।' उस व्यक्ति ने पूछा, माँ के बाद कौन? उन्होंने फरमाया, 'तेरी माँ।' तीसरी बार पूछने पर भी उन्होंने कहा, 'तेरी माँ।' चौथी बार पूछा तो बोले, 'तेरा पिता।' मतलब साफ है कि हदीस की रोशनी में माँ का स्थान पिता के मुकाबले तीन गुणा ऊँचा है। महात्मा गांधी ने कहा, यदि महिलाएँ साथ न देतीं तो मैं भारत को कभी स्वतंत्र न करा पाता।

मानव शरीर में दो आँखें हैं। दोनों का समान महत्त्व है। हरेक को दोनों नेत्र प्रिय हैं। इसी प्रकार, नर-नारी दोनों समान इज्जत के हकदार हैं परन्तु संन्यास धर्म में नारी को साधना में बाधक मान लिया गया। बहुत-से धर्मअनुयायियों ने नारी का तिरस्कार करके अपने को एक आँख वाला बना लिया। समाज में भेदभाव और गिरावट का मूल कारण यही है। दोनों आँखें समान महत्त्व पाएँ तो संसार पुनः स्वर्ग बने। जिस कार्य में संन्यासियों से चूक हो गई, उसे भगवान पूर्ण कर रहे हैं। स्वर्ग के गेट खोलने के लिए उन्होंने नारी के सिर पर ज्ञान-कलश रख उसे गुरु का दर्जा दे दिया है। नारी में स्वाभाविक वैराग होता है क्योंकि उसे पराये घर जाना होता है। वैराग की भूमि पर ही सर्वगुणों के फूल खिलते हैं। नारी के स्वाभाविक गुण जो ईश्वरीय कर्त्तव्य में मददगार बन सकते हैं, इस प्रकार हैं –

मैचिंग का गुण

महिलाएँ एक वस्तु का दूसरी के साथ मैच करने में माहिर होती हैं। वे साड़ी के साथ ब्लाऊज का मैच, कपड़ों के साथ बिन्दी का मैच, उत्सव के अनुसार गहनों का मैच, मकान के अनुसार पर्दों, फर्नीचर, रंग-रोगन की भी मैचिंग करती है। चूंकि मैचिंग का संस्कार जन्मजात है तो यही संस्कार अध्यात्म में भी काम आता है। आध्यात्मिक जगत में चाहिए मन, वाणी और कर्म की मैचिंग। जो मन में संकल्प उठे वही वाणी में आए, जो वाणी में आए, वो ही कर्म में दिखाई दे। दूसरे शब्दों में करनी, कथनी,

रहनी एक-समान बन जाए। मन-वचन-कर्म की यही मैचिंग संसार कल्याण का आधार है।

बदरंग को संवारना

महिलाएँ साफ-सफाई में माहिर होती हैं। यह सफाई घर की हो, बाल-बच्चों की हो, कपड़े या बर्तनों की हो, मनोयोग से करती हैं। सजावट के प्रसाधनों के बदरंग हो जाने पर उन्हें तुरंत बदल लेती हैं। नाखूनों की पोलिश के बदरंग होने पर उसे उतारना और नये सिरे से पोलिश लगाना उन्हें खूब आता है। इसके पीछे, ऐसे रहें जो दूसरों को पसंद आएँ, यह गुप्त भावना भी होती है।

अध्यात्म में आगे बढ़ने के लिए भी यही संस्कार चाहिए। **हमारे वे संस्कार जो बेरंग हैं, बदरंग हो गये हैं, उन्हें उतार फेंके। वे आदतें, वे बोल, वे कर्म जो दूसरों को पसंद नहीं आते, धारण न करें। यदि हमारा बोल ऊँचा है, यदि आवाज़ में सख्ताई है, यदि शंका करने की आदत है, यदि अभिमान का पुट है, यदि आलस्य और अलबेलेपन की कालख है, यदि मान-शान-दिखावा है तो ये सब भी बदरंग और बेरंग संस्कार हैं, हमारे व्यक्तित्व पर लगे दाग-धब्बे हैं, आत्म-ज्ञान और परमात्म-ज्ञान की रगड़ से इन्हें भी उतार लें और मधुर वाणी, नम्रता, उमंग-उत्साह, सत्यता आदि गुणों की नई पालिश आत्मा पर चढ़ा लें तो सबको प्रिय लगेंगे, सबका ध्यान खींचेंगे, सबको प्रेरित करेंगे और सबकी दुआओं के पात्र बनेंगे।**

नाटक-ड्रामा-कहानी का शौक

महिलाओं को कहानी सुनने-सुनाने में भी महारत हासिल होती है। 'अलिफ-लैला' नाम की प्राचीन कथा में तो एक बुद्धिशाली महिला ने कहानियाँ सुना-सुनाकर एक निर्दयी-कातिल बादशाह का दिल ही बदल डाला। उसे नारी-हत्या करने के बदले नारी-सम्मान करना सिखा दिया। व्रत के दिन भी नारियाँ मनोयोग से कहानी सुनती हैं, फिर सुनाने भी लग जाती हैं। कहानियाँ सुना-सुनाकर अपने बच्चों में अच्छे संस्कार भरना, उन्हें रोते से चुप करा लेना भी उन्हें खूब आता है। दूरदर्शन के बनावटी पर्दे पर पेश होने वाले नाटक, कहानियों का उन्हें बेसब्री से इंतज़ार रहता है। उनके पात्रों के नाम, डायलाग, हाव-भाव भी उन्हें याद हो जाते हैं। अध्यात्म के क्षेत्र में भी यह संस्कार खूब काम आता है। आध्यात्मिक ज्ञान है क्या? आत्मा के तीनों कालों की कहानी, परमात्मा के दिव्य कर्त्तव्य की कहानी और सृष्टि के आदि-मध्य-अंत की कहानी। इस कहानी के मुख्य एक्टर, डायरेक्टर, क्रियेटर हैं स्वयं निराकार परमात्मा शिव। फिर दूसरे नंबर के हीरो एक्टर हैं श्री लक्ष्मी, श्री नारायण और खलनायक हैं पाँच विकार (काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार और उनके बाल-बच्चे)। अतः अब महिलायें यह सुनिश्चित कर लें कि हमें किसका पक्ष लेना है? परमात्मा का या विकारों का? किसकी भूमिका, डायलाग और हाव-भाव पसंद है? परमात्मा के या विकारग्रस्त मनुष्यों के? निश्चित ही शुभ की पक्षधर महिलाओं को प्रभु की भूमिका ही पसंद है, वे उसी की पक्षधर बन, उसी के कर्त्तव्य में मददगार बनना चाहेंगी।

दया की भावना

महिलायें दया की देवी होती हैं। दूरदर्शन पर या अन्य किसी भी तरीके से सुनी जाने वाली कहानी, नाटक, धारावाहिक में यदि किसी पात्र के साथ अन्याय हो रहा हो तो उनकी आँखें भर आती हैं, दूसरे का दुख देख दिल पसीजने लगता है। पर्दे पर प्रस्तुत वह दुख तो बनावटी होता है परन्तु आज सृष्टि रूपी असली पर्दे पर अन्याय के शिकार, कष्टों से छलनी मनुष्य तो कदम-कदम पर मिलते हैं। तो जैसे बनावटी पात्र उनकी दया की भावना को जगा देते हैं, उसी प्रकार असली पात्रों के प्रति भी दया से भरकर, नारी उनके दुख दूर करने में मददगार बन सकती है। **आध्यात्मिक ज्ञान आते ही नारी समझ जाती है कि सुखी अपने कर्मों से सुखी है पर दुखी का दुख दूर करना मेरा कर्त्तव्य है, यह दया की भावना ईश्वरीय कार्य में बहुत मददगार है।**

(क्रमशः)

गतांक से आगे..

परिस्थिति – वरदान या अभिशाप

• ब्रह्माकुमार नरेश, मुज़फ्फ़रनगर

परिस्थिति बढ़ाती है विघ्न प्रतिरोधक क्षमता

परिस्थिति या विपत्ति मानव जीवन में उसी प्रकार ज़रूरी है जिस प्रकार एक अंतर्राष्ट्रीय खिलाड़ी को नित्य शारीरिक व्यायाम ज़रूरी है। जिस प्रकार व्यायाम से शरीर मज़बूत बनता है, उसकी रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ती है, उसी प्रकार जीवन में परिस्थितियों से आत्मा शक्तिशाली बनती है, उसकी विघ्न-प्रतिरोधक क्षमता बढ़ती है। परिस्थिति चाटुकारों से मुक्त करा देती है। परिस्थिति वह पूर्ण दर्पण है जो मनुष्य को उसका खुद का दर्शन कराती है। परिस्थितियाँ जीवन रूपी यात्रा के रास्ते के नज़ारे हैं जो जीवन को करीब से अनुभव कराते हैं। जितनी बड़ी परिस्थिति, उतना बड़ा पुरुषार्थ, उतनी ही बड़ी विजय और उतना ही बड़ा विजय का सुख। छोटी परिस्थिति अर्थात् छोटे सुख का मौका, बड़ी परिस्थिति अर्थात् बड़े सुख का मौका। परिस्थिति का अभाव अर्थात् नीरस, बेजान जीवन। जिसने दुख नहीं देखा है, वह सुख का पूरा अनुभव नहीं कर सकता। परिस्थिति से पलायन अर्थात् संभावित सुख से पलायन और दुख का आगमन। वह मनुष्य सुखी है जिसने उच्चतम एवं निम्नतम स्थितियों को सहन किया है, जिसने जीवन के उतार-चढ़ाव का अविचल भाव से सामना किया है। ऐसा मनुष्य दुर्भाग्य को शक्तिहीन करना व भाग्य को मुट्ठी में करना जानता है। परिस्थिति के निम्नलिखित फायदे हैं –

(1) परिस्थिति इस जन्म या पिछले जन्म में किये गये किसी विकर्म या कदाचार का फल होती है। कर्मफल भोग कर आत्मा आगे सुख प्राप्त कर सकती है अन्यथा पिछला विकर्म भावी जीवन पर ग्रहण लगाये रहता है।

(2) परिस्थिति के आने पर मनुष्य परमात्मा का स्मरण करता है अन्यथा कलियुग में बिना परमात्म-स्मृति के आत्मा घोर पतित हो जाये। इससे वह सतयुग तो क्या, द्वापर युग की भी अधिकारी न बन पाए।

(3) परिस्थिति पर विजय पाने के बाद आत्मा जिस हर्ष या सुख का अनुभव करती है, वह अद्भुत होता है। आत्मा परिस्थिति या इन्द्रियों के सुख से निकल कर 'अतीन्द्रिय सुख' का अनुभव करती है।

(4) परिस्थिति से जो अनुभव प्राप्त होता है, वह भविष्य में उससे भी बड़ी परिस्थिति का सामना करने का सामर्थ्य देता है। परिस्थिति आती ही है कुछ देकर जाने के लिए। **मनुष्य, जीवन में घटी विभिन्न घटनाओं से अनुभवी बनता है। परन्तु जीवन में घटी दुर्घटनाएँ उसे अनुभवमूर्त बनाती हैं। साधारण स्थिति से साधारण अनुभव प्राप्त होता है परन्तु परिस्थिति से 'अनुभव शक्ति' प्राप्त होती है। दूसरे शब्दों में, परिस्थिति, 'अनुभव शक्ति' की जननी है और 'अनुभव शक्ति' 'अष्ट शक्तियों' की जननी है। जब अष्ट शक्तियाँ प्राप्त हो जाती हैं तब परिस्थिति आती तो है शेर के रूप में, परन्तु सामने आते ही बन जाती है चूहा। अष्टभुजाधारी देवियों को शेर पर सवार दिखाया जाता है। जिस प्रकार 'सेर को सवा सेर' मिल जाता है, उसी प्रकार शेर (परिस्थिति) को भी 'सवार-शेर' (पुरुषार्थी) मिल जाता है।**

(5) परिस्थिति आत्मा के दिव्य गुणों व शक्तियों को कार्य करने का मौका देती है। यदि किसी आत्मा को जन्म दर जन्म, 'सदा परिस्थिति मुक्त' रहने का वरदान मिल जाये तो उस आत्मा से ये दिव्य गुण व शक्तियाँ धीरे-धीरे हमेशा के लिए लुप्त हो

जायेंगे।

(6) यदि परिस्थितियाँ न हों तो भगवान भी नहीं होगा क्योंकि उसके लिए करने को कुछ होगा ही नहीं। और यदि वह होगा भी तो मनुष्यों के लिए उसका कोई महत्त्व नहीं होगा। इस प्रकार तो परिस्थिति गुप्त रूप में मनुष्यों को वरदान में भगवान की सौगात देती है। फिर वह भगवान, वरदान के रूप में मनुष्यों को परिस्थिति मुक्त सतयुग की सौगात देते हैं। फिर द्वापरयुग में रावण, माया या शैतान मनुष्यों को विकारों की सौगात देकर उस दिशा में ले जाता है, जहाँ से परिस्थिति-युग या कलियुग का आरंभ होता है। इस प्रकार यह एक बना-बनाया खेल है जिसमें कल्याणकारी शिव परमात्मा ने गुह्यता से, माया व परिस्थिति, इन दोनों में भी कल्याण का रंग भर दिया है।

परिस्थिति और विकार

'जब तक जीना, तब तक सीना' अर्थात् ज़िन्दगी भर सांसारिक झंझट बने रहते हैं। परन्तु बाह्य झंझा (वर्षा सहित तीव्र आंधी) हो या आंतरिक-मानसिक झंझट, यदि कोई इन्हें आगे बढ़ने का साधन मानता है तो वह मानो परिस्थिति का सामना स्वस्थिति से करता है। जहाँ 'स्ववशता' है, वहाँ 'विवशता' हो नहीं सकती। 'स्व' यानि आत्मा यदि अपनी शक्ति-संपन्न स्थिति को प्रत्यक्ष कर दे तो परिस्थिति टिक नहीं सकती। 'पराधीन सपनेहु सुख नाही' पराधीन मनुष्य को कभी सुख नहीं मिलता। 'पराधीन' अर्थात् 'परिस्थिति के अधीन'। अधीनता के संस्कार, उसका अगला जन्म भी वैसा ही बना देते हैं।

परिस्थिति और विकार, इन दोनों में अन्तर है। परिस्थिति, विकारी व संयमित, दोनों प्रकार के मनुष्यों को आती है परन्तु परिस्थिति का आक्रमण संयम वाले मनुष्य पर नगण्य प्रभाव डालता है। परिस्थिति मज़बूत बनाती है और विकार कमज़ोर बनाते हैं। परिस्थिति 'अनुभवीमूर्त' बनाती है और विकार 'वासनामूर्त' बनाते हैं। परिस्थिति से 'आत्मिक संलग्नता' आती है, मनुष्य आंतरिक या आत्मिक प्रतिरोधक क्षमता को आगे कर मुकाबला करता है परन्तु विकारों से 'विकारात्मक संलिप्तता' आती है, वह आत्मिक गुण-शक्तियों को तिलांजलि दे देता है। परिस्थिति कुदरत की देन है जबकि विकार हैं संस्कार या रावण की देन। परिस्थिति अल्पकालीन होती है जबकि विकार दीर्घकालीन होते हैं। परिस्थिति से पाप नहीं बनता परन्तु विकारों से पाप बनता है। परिस्थिति से निकलना या निपटना आसान होता है जबकि विकारों से मुक्त होना अति कठिन होता है।

परिस्थिति का जन्म निम्नलिखित प्रकार से हो सकता है –

(1) आज मनुष्य काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, ईर्ष्या, आलस्य व अलबेलेपन जैसे अनेक विकारों से घिरा रहता है, जो फिर बाहर से आने वाली परिस्थितियों के प्रवेश द्वार हैं।

(2) प्रकृति के द्वारा: मनुष्यों ने प्रकृति के साथ जो छेड़छाड़ की है, उस कारण पाँच तत्व अक्सर हलचल में आते रहते हैं, जिसका खामियाजा मनुष्यों को 'परिस्थिति' के रूप में भुगतना पड़ता है। बाढ़, सूखा, अतिवृष्टि, भूकम्प, वायु व जल प्रदूषण, ओज़ोन लेयर का क्षतिग्रस्त होना आदि इसके कुछ उदाहरण हैं।

(3) बढ़ती जनसंख्या, बीमारियाँ व घटते प्राकृतिक व मानवकृत संसाधन।

(4) मानवीय गुण-शक्तियों का पतन: आज मनुष्य में सहनशक्ति, सहयोग-शक्ति, सामना करने की शक्ति, निर्णय-शक्ति, समाने की शक्ति व अनेक स्वाभाविक गुणों का मानो पतन हो गया है।

(5) परमात्मा से बिछुड़ना: यद्यपि भक्ति से मनुष्य अपने को परमात्मा से जुड़ा मानते हैं परन्तु बार-बार परिस्थितियों से घिरना, विकारों व बुराइयों से मुक्त न हो पाना, उत्साहहीन जीवन, परमात्मा के 'एक मौलिक स्वरूप' से अनभिज्ञ होना आदि बातों से स्पष्ट होता है कि वे

वास्तव में परमपिता से बिछुड़े हुए हैं।

(6) सृष्टिचक्र या कालचक्र की गति के अनुसार कलियुग में परिस्थितियों का आना एक नियम है। सृष्टिचक्र या कालचक्र 'परिवर्तन के शाश्वत नियम' का वाहन है और परिस्थिति उस वाहन से निकला धुआं है। सतयुग व त्रेतायुग में यह वाहन प्रदूषण मुक्त होता है जबकि द्वापर व कलियुग में यह घोर प्रदूषित होता है।

(7) परिस्थिति आसक्ति से ही उत्पन्न होती है, कर्म से नहीं। ज्यों ही कर्त्ता (आत्मा) आसक्तिवश कर्म में लिप्त हो जाता है, परिस्थिति या माया 'आ सकती' है।

(8) पूर्व जन्म के कर्मों का हिसाब-किताब: कहावत है, 'जैसा बोया वैसा काटा।'

(9) संगदोष से: चल रहे घोर कलियुग में मनुष्य स्वार्थी व मतलबी हो गये हैं और छोटे-से फायदे के लिए भी एक-दूसरे से विश्वासघात करते रहते हैं। ऐसे में बिना जाँचे-परखे किसी को भी मित्र बना लेना, निकट भविष्य में परिस्थिति को निमंत्रण देना है। टाली जा सकने वाली परिस्थिति का शिकार होना जीवन की सबसे अप्रिय घटना है। ईश्वरीय ज्ञान ऐसी स्थिति से बचाव कराता है।

ज़रूरी है आत्म-प्रबन्धन

यदि निजी स्तर पर परिस्थिति को उत्पन्न करने वाला कोई एक कारण ढूँढा जाये तो वह है 'दैनिक जीवन में आत्मप्रबन्धन की कमी'। आत्मप्रबन्धन अर्थात् नियमबद्ध, समयबद्ध, संयमित-सदाचारी जीवन पद्धति। **संसारी मनुष्य 'प्रबन्धक' या 'महाप्रबन्धक' कहलाना चाहता है परन्तु पहले 'आत्मप्रबन्धक' होना नहीं चाहता। आज सभी एक-दूसरे के 'पर-बन्धक' बने हुए हैं अर्थात् एक-दूसरे से आपसी लेन-देन के बंधन में फँसे पड़े हैं। इससे आत्मप्रबन्धन की बजाय सर्वत्र 'आत्मा पर बन्धन' दिखाई दे रहा है। यहाँ तक कि स्वयं परमात्मा को भी मनुष्य अपने दकियानूसी, विवेक प्रतिकूल रीति-रिवाजों के बंधन में बाँध कर रखते हैं और समझते नहीं कि वह बंधायमान नहीं है बल्कि बंधनमुक्त करने वाला है। हाँ, ज्ञानयुक्त प्रेम व वैराग्य-युक्त समर्पण से वह हर रिश्ते में बँध सकता है।**

मनुष्य दूसरों पर शासन करना चाहता है परन्तु करने लगता है शोषण। शोषण अर्थात् दूसरों के लिए परिस्थिति पैदा करना। वही मनुष्य फिर दूसरों के प्रति अपने दुष्कर्मों को भूल कर परमात्मा से 'विघ्न व परिस्थितिमुक्त जीवन' की गुहार भी लगाता रहता है। अनुशासित मनुष्य के जीवन में परिस्थिति बाहर से तो आ सकती है परन्तु वह स्व-उत्पादित नहीं हो सकती, जबकि अनुशासनहीन मनुष्य स्वयं ही परिस्थिति पैदा करता रहता है। बाह्य परिस्थिति का निदान आत्मा की आंतरिक शक्तियों से हो जाता है परन्तु यदि अनुशासनहीनता-वश परिस्थितियाँ अंदर से उत्पन्न हो रही हों, तो शक्तियाँ काम में नहीं आतीं। **(क्रमशः)**

ब्रह्माकुमारीज़ द्वारा विभिन्न टी.वी. चैनलों पर प्रतिदिन प्रसारित होने वाले कार्यक्रमों की समय-सूची

1. **आस्था :** सायं 7.10 से 7.40 तक और
   रात्रि 10.30 से 11 बजे तक
2. **सोनी :** शनिवार और रविवार को प्रातः 6 से 6.30 बजे तक
3. **सौभाग्य :** प्रातः 5.30 से 6 बजे तक और
   सायं 3.30 से 4 बजे तक
4. **जी जागरण :** प्रातः 4.15 बजे से 6 बजे तक
5. **ईटीवी यू.पी :** प्रातः 5 बजे से 5.30 बजे तक
6. **ईटीवी एम.पी :** प्रातः 5 बजे से 5.30 बजे तक
7. **ईटीवी बिहार :** प्रातः 5 बजे से 5.30 बजे तक
8. **ईटीवी राजस्थान :** प्रातः 5 बजे से 5.30 बजे तक

लाल बत्ती वाला बाबू

• ब्रह्माकुमार श्रीनिवास, चित्तौड़गढ़

मैं बचपन में भगवान शिव के प्रति असीम भावना रखता था। माता-पिता की आर्थिक स्थिति अधिक अच्छी नहीं थी। प्राथमिक पढ़ाई गाँव के ही सरकारी स्कूल में की। उसके बाद की पढ़ाई के लिए एक पुरानी साइकिल से शहर पढ़ने जाता रहा। एक दिन मैं अपने कुछ सहपाठियों के साथ स्कूल से घर आ रहा था। पीछे से एक एम्बेसडर कार आ रही थी जिस पर लाल बत्ती नाच रही थी और रास्ते से सभी हटते जा रहे थे, सलाम कर रहे थे। दरअसल वो कलेक्टर साहब की गाड़ी थी। यह नज़ारा मुझे बहुत रोमांचित कर रहा था। अब तो मेरे मन में भी 'लाल बत्ती वाला बाबू' बनने की तमन्ना जाग उठी। सोते-जागते बस यही बात दोहराता था कि 'मैं भी लाल बत्ती वाला बाबू बनूँगा।' लेकिन उस बाल उम्र में, ऐसा बाबू कैसे बनते हैं, यह कुछ भी मालूम नहीं था।

टूटता उमंग पुनः जुड़ गया

आंध्र प्रदेश में ही 10वीं कक्षा तेलगू भाषा में पास की और उसके बाद पॉलिटेक्निक किया, फिर इंजीनियरिंग किया लेकिन कलेक्टर (आई.ए.एस.) बनने की पढ़ाई नहीं की तो वो बन न सका जिसका मुझे बहुत अफसोस रहा। इंजीनियरिंग में सुअवसर अच्छे होने से मैंने इसी में पंख पसारे। सन् 1991 में हिंदुस्तान जिंक लि. चित्तौड़गढ़ में नौकरी मिली। सन् 1996 में शादी हो गई, करीब 10-11 वर्ष चित्तौड़गढ़ में रहने के बाद सन् 2002 में शिवजयंती के दिन ईश्वरीय ज्ञान का परिचय मिला। सात दिनों के कोर्स के दौरान ही इतने अनुभव हुए कि हद नहीं। कोर्स में ही ब्रह्मचर्य जीवन के महत्त्व का पता चला तो अपने विवाह का अफसोस दीदी को बताया। दीदी ने ब्रह्मा बाप का उदाहरण दिया और कहा – 'ये भी गृहस्थी थे, इन्होंने भी शिव बाबा से मिलने के बाद ही पवित्र जीवन अपनाया।' यह सुनकर और ब्रह्मा बाप को देखकर मेरा टूटता उमंग-उत्साह पुनः जुड़ गया।

कई तनाव कोसों दूर चले गये

कोई कहता है, वो बचपन के दिन लौटा दो..लेकिन मेरा बचपन तो जैसे खुद लौट आया। फिर से नया जन्म हुआ, मैं स्वयं को अत्यधिक ऊर्जावान अनुभव करने लगा। इतने दिन बीत जाने पर भी मैं अपने उस बचपन के ख्वाब (कलेक्टर बनना) को नहीं भूला पा रहा था और अफसोस करता रहता था कि मैंने वैसी पढ़ाई क्यों नहीं की। यहाँ तक कि मैं एक कार भी खरीद लाया था लेकिन लोकनीति और कानून की वजह से उस पर घूमने वाली लाल बत्ती नहीं लगा सका तो कार का मज़ा अधूरा-अधूरा ही लगता था। लेकिन नियमित मुरली क्लास एवं योगाभ्यास से वह अफसोस और अन्य भी कई तनाव व चिन्तायें कोसों दूर चली गई।

बचपन के ख्वाब से भी बड़ी अनुभूति

एक दिन मैं सेन्टर से प्लांट पर जा रहा था। गाड़ी में बैठे-बैठे ही बहुत खुशी हो रही थी। मैंने सोचा, यह खुशी, यह नशा किस कारण से है? जाँच करने पर पता चला कि यह खुशी और नशा तो 'बत्ती वाला बाबू' बनने का है। वो कलेक्टर लोग अपनी गाड़ी के ऊपर लाल लाइट लगाते हैं जिससे वे भीड़ में भी हों तो भी लोग उन्हें रास्ता दे देते हैं। वे मंज़िल पर आराम से, बिना रुकावट के पहुँच जाते हैं। लेकिन, **मैं तो स्थूल लाइट की नहीं बल्कि निराकार लाइट परमात्मा शिव बाबा की छत्रछाया में हूँ जिससे रुकावटें, माया के विघ्न स्वतः परे हट जाते हैं और माया खुद झुककर सलाम करती है। अब बत्ती वाली गाड़ी की बात छोड़िये, मुझ आत्मा की ही बुझी हुई बत्ती जाग चुकी है। परमधाम से आती हुई लाइट सदा ही मेरा सुरक्षा-कवच है।** वे आई.ए.एस. लोग हज़ारों में से चुने

जाते हैं परन्तु भगवान ने तो मुझे कोटों में से चुना है। उनका पद तो एक जन्म का है पर मेरा पद तो 21 जन्मों तक देवपद है। वे कलेक्टर लोग किसी नगर विशेष के हद के कल्याणकारी बनते हैं परन्तु शिव बाबा ने तो मुझे बेहद का विश्व कल्याणकारी बना दिया है। जब भी कार लेकर सेवा पर जाता हूँ तो विश्व कल्याणकारी और बेहद के कलेक्टरपने की अनुभूति होती है। बचपन के ख्वाब वाले बाबू से भी बड़ी अनुभूति होती है। यही खुशी और नशा आज भी कायम है।

इसके साथ और भी कई अनुभव बाबा ने कराये हैं। प्लांट में पदोन्नति होकर 'प्लांट मैनेजर' का पद मिला तो बाबा ने मेरे द्वारा पूरे प्लांट के अधिकारियों, कर्मचारियों एवं मजदूरों को मुरली सुनाने की सेवा करवाई और यह अब भी चल रही है। सुबह-सुबह योग-मुरली के बाद ही प्लांट को चालू करते हैं। मुरली का असर यह हुआ कि जहाँ पहले प्लांट अपनी क्षमता के 70-75% पर काम करता था वहीं अब 100% क्षमता पर काम करता है। जहाँ पहले चाँदी 2 टन प्रति मास उत्पादित होती थी, अब 12 टन उत्पादित होती है। तांबा 5 टन से बढ़कर 11.5 टन प्रतिमास और शीशा 5,000 टन प्रति मास से बढ़कर 8,500 टन प्रति मास हो गया है। मेरे अच्छे कार्य को देखकर मुझे उस प्लांट में ट्रांसफर कर दिया गया जहाँ अशान्ति थी और उत्पादन कम होता था। उस नये प्लांट में दो कैज्युअल लेबर जिन्दा जल गये थे। इस पर कंपनी ने उस प्लांट मैनेजर को पद से हटा दिया था। कोई भी दूसरा ऑफिसर वहाँ जाने से डरता था। प्रबंधकों ने परीक्षा लेने के लिए जानबूझकर मुझे वहाँ नियुक्त किया। बाबा ने इस परीक्षा में भी मुझे पास करवा दिया और उस नये प्लांट के भी हालात सुधरते गये। बाबा की छत्रछाया से सभी तरह के विघ्न समाप्त हो गये। स्वयं शिव बाबा अपनी दिव्य शक्तियों सहित मेरा साथी बन गया और मुझे विश्व कल्याणकारी बेहद का कलेक्टर बना दिया, और क्या चाहिए! ❖

शिव में इसे लगा दो

ब्रह्माकुमार अवनीश, रेनुकूट, सोनभद्र

इस जीवन को सफल करो, शिव में इसे लगा दो
सदियों से सोये हो अब तो खुद को आप जगा दो।
शिव बाबा जो कहता है, सुन लो मेरे भैया
यह दुनिया तो बनी पड़ी है अब मृत्यु की शैया।।

काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह का देखो ताना-बाना
कुदरत के पाँचों तत्वों का कोई नहीं ठिकाना।
तोड़ के मर्यादा को डुबो दें कब ये सबकी नैया
यह दुनिया तो बनी पड़ी है अब मृत्यु की शैया।।

ओज़ोन परत में बड़े-बड़े रोज़ हो रहे छेद
ग्लेशियरों का गलना ही है शामत का संकेत।
बढ़ते सागर के जल में, शिव ही एक खिवैया
यह दुनिया तो बनी पड़ी है अब मृत्यु की शैया।।

तापमान भी धरती का निशिदिन बढ़ता जाता
परमाणु और अणु बमों से रोज़ आग बरसाता।
मौत खड़ी सिरहाने पे, अरे बाप रे, मइया
यह दुनिया तो बनी पड़ी है अब मृत्यु की शैया।।

सरकारें भी सांसत में, चिंतित हैं विज्ञानी
धर्मगुरु भी घबराये देख धर्म की हानि।
तब परमधाम से आते हैं धरती पे राम रमैया
यह दुनिया तो बनी पड़ी है अब मृत्यु की शैया।।

जन्म आपका अन्तिम है यह, इसको नहीं गंवाओ
तन, मन, धन, संकल्प, शक्ति
सब शिव में आप लगाओ।
आफत बनके नाचेगी अब माया ता, तक, थईया
यह दुनिया तो बनी पड़ी है अब मृत्यु की शैया।।

तन-मन का स्वास्थ्य

• ब्रह्माकुमार उदयवीर सिंह तोमर, मेरठ

आज विश्व की जनसंख्या लगभग साढ़े छह अरब है परंतु हर जीवात्मा किसी न किसी रोग से ग्रस्त है। कहते हैं, भोगी रोगी होते हैं और योगी निरोगी होते हैं। जीव आत्मा दो शब्दों से मिलकर बना है, जीव आत्मा। जीव पाँच तत्वों से मिलकर बना है जिसको शरीर भी कहा जाता है। आत्मा में तीन शक्तियाँ हैं मन, बुद्धि और संस्कार। आत्मा अति सूक्ष्म बिन्दु है जो इन नेत्रों से दिखाई नहीं पड़ती और शरीर स्थूल है। शरीर कंप्यूटर और आत्मा प्रोग्रामर है। शरीर की तुलना हम रथ, कार आदि से भी कर सकते हैं तथा आत्मा की तुलना रथवान, ड्राइवर से भी कर सकते हैं। आत्मा भी रोगी होती है तो शरीर भी रोगी होता है। इसको इस प्रकार भी कहा जा सकता है कि आत्मा को किसी गुण की कमी रोगी बना देती है और शरीर के पाँच तत्वों का असंतुलन, शरीर को रोगी बना देता है। डॉक्टर इस असंतुलन को संतुलित करने के लिए उपचार करता है। मान लीजिए, शरीर में अग्नि तत्व की अधिकता हो जाती है तो बुखार रोग हो जाता है। उसको कम करने के लिए डॉक्टर औषधि देता है तथा आवश्यकता अनुसार बर्फ की पट्टी आदि रखने का भी परामर्श देता है। किसी रोगी का मिट्टी तत्व बढ़ जाता है तो उसको मोटापा कम करने की सलाह दी जाती है। इसी प्रकार अन्य तत्व आकाश, वायु, नीर आदि के बारे में भी कहा जा सकता है। आत्मा के मूल गुणों अर्थात् ज्ञान *(Knowledge)*, पवित्रता *(Purity)*, शान्ति *(Peace)*, प्रेम *(Love)*, सुख *(Happiness)*, आनन्द *(Bliss)* तथा शक्ति *(Power)* की कमी आत्मा को रोगी बना देती है।

निरोगी बनाने की मुनादी करवा रहे हैं भगवान

शरीर के उपचार हेतु तो हम डॉक्टर, वैद्य व सर्जन आदि के पास जाकर, परामर्श लेकर, दवा आदि सेवन करके तथा परहेज़ करके स्वस्थ रहने का प्रयास करते हैं परंतु फिर भी रोगों से मुक्ति नहीं मिलती। यदि मिलती भी है तो अल्पकाल के लिए। भला सोचिये, यदि आपकी कार ठीक हो भी गई और उसका ड्राइवर अस्वस्थ ही रहा तो कैसे चलायेगा। क्या अंधा ड्राइवर बढ़िया से बढ़िया गाड़ी को भी चला सकता है? उत्तर मिलेगा, जी नहीं। तो प्रश्न यह है कि आत्मा का उपचार करने वाला कौन? हालांकि भक्ति मार्ग में पुकारा भी गया है कि 'वैद्य सांवरिया होय' तो रोग कटे। भक्ति मार्ग में सांवरिया कहा जाता है भगवान को। इससे स्पष्ट है कि आत्मा का इलाज तो भगवान ही कर सकते हैं। वे ही यह योग्यता रखते हैं कि अति सूक्ष्म ज्योतिबिन्दु आत्मा का ऑपरेशन कर उसको निरोगी बनायें। वे इस सृष्टि पर तब ही आते हैं जब समझते हैं कि अब आत्माओं का उपचार हुए बिना काम चलना ही नहीं है। आत्मा जब तमोप्रधान हो जाती है तब ही वे आकर मुनादी कराते हैं कि रूहानी डॉक्टर व सर्जन परमपिता परमात्मा अपना घर परमधाम छोड़कर पृथ्वी पर आत्माओं को निरोगी बनाने के लिए आये हैं, अपना उपचार करा लें परंतु इस मुनादी का भी सब विश्वास नहीं करते और उपचार कराने से वंचित रह जाते हैं। जो विश्वास करके निश्चयबुद्धि होकर उपचार कराते अर्थात् सर्जन (सृजनहार परमात्मा) के परामर्श अर्थात् श्रीमत पर चलते हैं उनके रोग कट जाते हैं तथा कम से कम 21 जन्मों के लिए आत्मा स्वस्थ बन जाती है।

दवा का काम करती है परमात्मा की याद

आत्मा का उपचार भगवान कैसे करते हैं? भगवान शिव कहते हैं कि आत्मा के सातों गुण यदि आत्मा में पुनः भर जायें तो आत्मा ज्ञान स्वरूप, पवित्रता स्वरूप, शान्ति स्वरूप, प्रेम स्वरूप, सुख स्वरूप, आनन्द स्वरूप व शक्ति स्वरूप बन जायेगी। इसी को निरोगी आत्मा कहा जाता है। परमात्मा गुणों के सागर हैं, उनके गुण कभी भी कम नहीं होते क्योंकि वे

जन्म-मरण में नहीं आते। परमपिता परमात्मा में सभी गुण भरे हुए हैं और आत्माओं में गुण नहीं रहे हैं तो आत्मा को अपने परमपिता से संबंध जोड़ना आवश्यक है। यदि हम अपने को आत्मा समझकर अपने पिता परमात्मा से संबंध स्थापित करके याद करते रहें तो निश्चित ही आत्मा की बैटरी पूर्णरूपेण समस्त गुणों से चार्ज हो जायेगी। परमात्मा की याद ही दवा का काम करेगी तथा उन द्वारा बताई गई श्रीमत अर्थात् परहेज़ पर भी चलना होगा। इससे अवश्य ही आत्मा निरोगी हो जायेगी।

शरीर में आने से आत्मा अपने मूलभूत गुणों को भूल जाती है। 'मैं आत्मा हूँ' ऐसा चिन्तन करने से आत्मा को अपने वास्तविक स्वरूप की अनुभूति होती है। जैसे पानी, अग्नि के संपर्क में आने से गर्म हो जाता है परंतु अग्नि से अलग होते ही पुन: ठंडा हो जाता है। इसी प्रकार, शरीर में रहते, शरीर के भान से डिटेच (न्यारे) रहो तो आत्मिक गुणों की अनुभूति होती है।

स्वस्थ अर्थात्
स्व (आत्मा) में स्थित

यदि ड्राइवर स्वस्थ हो परंतु गाड़ी खराब अर्थात् रोगी ही रहे तो भी काम चलने वाला नहीं। स्वस्थ मन को शरीर भी स्वस्थ चाहिये। मूर्ति सुन्दर हो और मंदिर जर्जर अवस्था वाला हो तो उसके अंदर की तो बात छोड़ो, उसके समीप भी कोई जाना पसंद नहीं करेगा। डॉक्टरों की दवा करते, ऑपरेशन कराते-कराते लोग परेशान हो चुके हैं परंतु लाभ नहीं होता। वास्तव में कारण यह है कि मन दुरुस्त नहीं है। यदि मन दुरुस्त हो जाये, सोच बदल जाये तो रोग कटें। गांधी जी भी कहते थे, खुश रहने के लिए विचारधारा बदलो। हम व्यर्थ विकल्पों का त्याग करें और सकारात्मक सोचें तो मन स्वस्थ हो जायेगा, उसका अच्छा प्रभाव तन पर पड़ेगा तो तन भी स्वस्थ हो जायेगा। स्वस्थिति अर्थात् आत्म स्थिति में स्थित होने को ही तो स्वस्थ कहते हैं।

जीवन का अर्थ है सुखी जीवन

जैसे साइकिल के पैडिल और सवार के पैर का निकट का संबंध है तथा हैंडिल और हाथ का भी निकट का संबंध है। यदि पैर ठीक है पर पैडिल टूटा हुआ है तो साइकिल चल नहीं सकेगी। अत: सवार का कर्त्तव्य बनता है कि वह अपनी साइकिल के पैडिल को ठीक कराये। इसी प्रकार हमारा जीवन भी साइकिल (चक्र) ही तो है जिसे कहते हैं जीवन-चक्र या काल-चक्र। इस जीवन-चक्र को सुचारु चलाने के लिए शरीर और आत्मा दोनों का ठीक होना अनिवार्य है। जीवन, सुखी जीवन का नाम है। दुखी जीवन, जीवन नहीं, वह तो भार है। इसलिये भगवान कहते हैं कि अब मेरे बने हो तो सुखी जीवन जीना सीखो। ऐसी कला सीखो जो आपका जीवन सुखी हो और फिर आप दूसरों का भी जीवन सुखी बना सको। लोग आपके जीवन को देखकर प्रेरणा लें कि हम भी इस प्रकार चलकर अपना जीवन सुखी बनायें।

जैसे माँसपेशी को प्रोटीन चाहिये, हड्डी को कैल्शियम चाहिये, इसी तरह, मस्तिष्क को आवश्यकता है ज्ञान की, फेफड़ों को शांति की, ज्ञानेन्द्रियों-कर्मेन्द्रियों को पवित्रता की, हृदय को प्रेम की, पाचन क्रिया को आवश्यकता है सुख की। अन्त:स्रावी ग्रंथि को आनन्द की आवश्यकता है और माँसपेशी को आवश्यकता है शक्ति की। पूरे शरीर के लिए उपरोक्त सभी गुणों की आवश्यकता है।

इस प्रकार अब हम समझ गये हैं कि शरीर के प्रत्येक अंग की प्रक्रिया को सुचारु रूप से चलाने के लिए स्थूल पदार्थों के साथ-साथ सूक्ष्म गुणों की धारणा भी अत्यंत ज़रूरी है। इसलिए तो लोग गाते हैं कि 'योगी की महिमा महान।' राजयोगी को ब्रह्मचर्य, शुद्ध आहार अर्थात् सात्विक भोजन, सत्संग तथा दिव्य गुणों की धारणा करनी अति आवश्यक है। राजयोगी का मतलब ही है शरीर में रहते हुए परमात्मा के साथ। हमें कर्म करते हुए भी परमात्मा पिता की याद रहे अर्थात् उसके समीप व समान हो जायें। ❖

एक आध्यात्मिक यात्रा – अनेक सुखद अहसास

• **राजकुमारी मदान, कैथल**

कुछ यात्रायें अचानक बनती हैं और आश्चर्यजनक रूप से सफल हो जाती हैं। सत्ताइस अप्रैल, 2009 से 1 मई, 2009 तक मेरा अपने पति अमृतलाल मदान के साथ आबू पर्वत स्थित ब्रह्माकुमारी आश्रम में प्रवास तथा इस प्रवास से जुड़े अहसास, सुखद स्मृतियाँ छोड़ गये और अनेक प्रेरणायें भी।

मैं ब्रह्माकुमारी आश्रम, कैथल (हरियाणा) में एकाध बार ही गई थी, हालाँकि मेरे पति सन् 1991 में माउंट आबू भी हो आये थे और स्थानीय आश्रम में विशेष अवसरों पर जाते रहे हैं। उनसे ब्रह्माकुमारियों के जीवन-दर्शन एवं जीवन-शैली के विषय में सुनकर अच्छा भी लगता था और उत्सुकता भी जगती थी किंतु सरकारी नौकरी तथा बच्चों की ज़िम्मेवारियों के चलते अधिक समय न निकाल पाई।

देह से परे

सूक्ष्म आयाम की अनुभूति

मैंने सुना था कि आश्रम में राजयोग कराते हैं जिससे कायाकल्प हो जाता है लेकिन सुनना और स्वयं जाकर अनुभव करना, दो अलग-अलग बातें हैं। यहाँ आने की तीव्र इच्छा इसलिए भी बनी कि हम आस्था चैनल पर ब्रह्माकुमारों एवं विदुषी ब्रह्माकुमारियों के प्रवचन और परिचर्चाएँ सुनते रहे हैं। इनमें जीवन के विभिन्न पहलुओं और समस्याओं पर बड़ी सूक्ष्मता से वार्तालाप तथा प्रश्नोत्तर होते हैं जो हमें बहुत प्रभावित करते हैं। इनके अतिरिक्त कभी-कभी ध्यान के क्षण भी हमें आह्लादित एवं शांत कर जाते हैं। प्राय: महसूस होता कि इस देह से परे भी एक सूक्ष्म आयाम है जो परमसुख, शांति व आनंद का आभास कराता है। जब शिवानी बहन 'मैं शांत स्वरूप, पवित्र स्वरूप, प्रेम स्वरूप, आनंदमयी आत्मा हूँ' का पाठ पढ़ाती तो जी करता कि उड़ कर आबू पर्वत जा पहुँचें।

आबू रोड की धरती पर जब हम उतरे तो सहज विश्वास ही न होता था। हमें लेने आए ब्रह्माकुमार भाई ने जब यह टिप्पणी की कि यहाँ तो असामान्य आत्मायें उतरती हैं – दिव्यता का पहला रोमांचकारी अनुभव हुआ।

थकान उड़ गई

ब्रह्माकुमार रणजीत फुलिया ने भी हमें आबू पर्वत आने की प्रेरणा दी थी। उन्होंने पठनार्थ संस्था का साहित्य भी दिया और आश्रम की पत्रिकाओं में कुछ रचनात्मक सहयोग देने का आग्रह भी किया। हमने उनसे वायदा किया कि हम जल्दी प्रोग्राम बनायेंगे। जब हम आबू पर्वत स्थित ब्रह्माकुमारी ईश्वरीय विश्व विद्यालय में प्रवेश कर रहे थे तो लगा कि दिल्ली से चौदह घंटों की यात्रा की थकान फुर्र करके उड़ गई है और शिवबाबा ने पुष्पक विमान से उड़ाकर, सीधा सुखधाम में लाकर आराम से उतार दिया है।

स्वर्गधाम में रहने का-सा अहसास

यहाँ सभी ब्रह्माकुमार एवं ब्रह्माकुमारियों की सेवा भावना, समर्पण भावना एवं चेहरों की अपार खुशी देखकर ऐसा लगा जैसे हम दिव्य, स्वार्थरहित एवं शुल्क रहित दुनिया में आ पहुँचे हैं जो बाहर की आपाधापी, चकाचौंध तथा ईर्ष्या-द्वेष से बिल्कुल ही अलग है। निस्संदेह यह आश्रम महाशांति का कुंज है जहाँ सदा शिवबाबा का ज्योतिपुंज आँखों के सामने रहता है। **ओमशांति भवन में जब प्रात: मुरली पढ़ी और समझाई जाती है तो मन करता है कि इसे बेसुध होकर सुनते ही रहें, नये आयाम खुलते जाते हैं। इन क्षणों में लगता है कि हम देहधारी केवल आत्मा बन कर रह गये हैं, हमारी देहानुभूति लुप्त हो जाती है और**

स्वर्गधाम में रहने का-सा एहसास होता है।

ब्रह्माकुमार मृत्युंजय भाई ने अति व्यस्त होते हुए भी पहले दिन ही हमसे भेंट करने का समय निकाला और दो पुस्तकों की अमूल्य भेंट प्रदान की। उन्होंने एक युवा ब्रह्माकुमार भाई को निर्देश दिया कि वह कार से हमें आसपास के दर्शनीय स्थलों पर भ्रमण करा लाए। स्वागत कक्ष के अधिकारियों ने भी समय-समय पर हमारा पूरा सहयोग किया। ब्रह्माकुमार फुलिया जी ने निरंतर हमारे साथ संपर्क बनाए रखा। उनके निर्देशानुसार अनेक वरिष्ठ ब्रह्माकुमार भाइयों से हमारी लाभदायक मुलाकातें हुईं। हम इन सबके हृदय से आभारी हैं।

तीस अप्रैल की रात्रि को भोजनोपरांत लगभग बीस मिनट का जो समय हमने पूज्या दादी रतनमोहिनी जी के साथ बिताया, वह हमेशा याद रहेगा। उन्होंने हमारे बारे में जानकारी ली और फिर 12-15 मिनट लगातार बोलकर हमें धर्म, अधर्म, पाप, पुण्य, पवित्रता, दिव्यता, आत्मा, परमात्मा, कलियुग, सतयुग आदि के विषय में अनेक बहुमूल्य विचार दिये। उनकी धीमी, मीठी वाणी सुनते हुए लगा जैसे कोई वृद्धा देवी माँ अपने बच्चों को अच्छे-बुरे का उपदेश दे रही हों। अंत में उन्होंने बड़ी कृपापूर्वक आध्यात्मिक डायरी, पेन तथा बाल कृष्ण (जिसके एक हाथ में भावी स्वर्ग का वृत्ताकार रूप है) की मूर्ति के उपहार दिये तथा प्रसाद भी। ये सब पाकर हम दोनों धन्य हुए।

इस प्रकार अचानक बनी यात्रा का सुखद अंत हुआ। हम दोनों पति-पत्नी नई जीवन-दृष्टि, आशा, पवित्रता, दिव्यता, प्रेम, शांति तथा जीवन नाटक में अपनी भूमिका भली-भाँति निभाने की प्रेरणा लेकर घर लौटे।

❖

मैं क्या हूँ?

रामेश्वर प्रसाद रावत, छिपीटोला (आगरा)

मैंने मैं का मर्म न जाना, मैं क्या हूँ पहचान न पाया
हाथ, पैर, सिर, पेट, पीठ के, नाक, कान के नाम गिनाये
आँखों से समझाया सब कुछ, मुख से भी कुछ बोल सुनाये
इन अंगों में मैं न मिला तो, सोच-सोच कर मन पछताया।
मैंने मैं का मर्म ....

पूछ लिया जब आप कौन हैं, जाति-धर्म-व्यवसाय बखाना
संप्रदाय का परिचय देकर, पद अपने का गाया गाना
इसीलिए तो बढ़ी कामना, अपना यश जीवन-भर गाया।
मैंने मैं का मर्म ....

यह शरीर मैं का मंदिर है, ध्यान लगा कर इसको जानो
जीवन के सुख सभी क्षणिक हैं, दिव्य दृष्टि कर यह पहचानो
पाप कर्म फिर क्यों करते हो, चल पाये कितने दिन काया।
मैंने मैं का मर्म ....

आत्म ज्ञान जिसको होता है, हानि-लाभ सब एक समाना
राग-द्वेष से रहित हो गया, सत्य रूप जिसने पहचाना
काम-क्रोध का असर नहीं कुछ, दादी जी ने यही बताया।
मैंने मैं का मर्म ....

मैं अनंत-अविनाशी जग में, मनोकामना मेरी चेरी
यह शरीर तो वस्त्र पुराना, परिवर्तन में करूँ न देरी
मीठे बच्चे, मैं को जानो, शिव बाबा ने यह समझाया।
मैंने मैं का मर्म ....

कुमारियों की दिव्य फुलवारी 'शक्ति निकेतन', इन्दौर

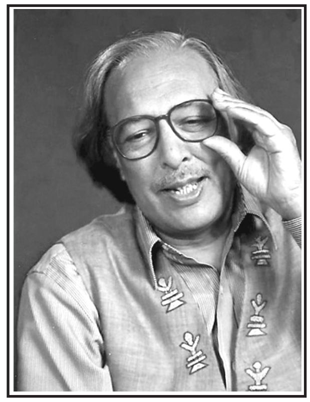

सुप्रसिद्ध कवि, पत्रकार एवं लेखक प्रोफेसर डॉ. सरोज कुमार जी कई वर्षों से ब्रह्माकुमारीज़ संस्थान से जुड़े हैं। वे इन्दौर स्थित दिव्य जीवन कन्या छात्रावास बनाम शक्ति निकेतन के भी विभिन्न कार्यक्रमों में आते रहते हैं। तो जानिए – शक्ति निकेतन की कहानी सरोज कुमार जी की जुबानी ...

ब्रह्माकुमारी ईश्वरीय विश्व विद्यालय अपने नाम से ही मूल आस्थाओं को प्रकट कर देता है। शक्ति निकेतन इस विश्व विद्यालय की आस्थाओं का ही एक साक्षात् निदर्शन (उदाहरण) है। साथ ही एक ऐसी वर्कशॉप है जिसमें यह विश्व विद्यालय अपने संकल्प और सपने साक्षात् करने की प्रयोगधर्मिता, सक्रियता के साथ निभा रहा है। कुमारियों को केन्द्र में रखकर अपनी आधारभूत संरचना रचने वाले इस विश्व विद्यालय द्वारा संचालित यह शक्ति निकेतन कहने को तो छात्रावास है परंतु अन्य छात्रावासों से अपनी प्रकृति एवं उद्देश्यों में एकदम भिन्न ही नहीं, विशिष्ट भी है।

भारत के कोने-कोने से आकर यहाँ रहने व पढ़ने वाली बच्चियाँ मात्र स्कूलिंग के लिए नहीं आतीं। औपचारिक शिक्षा तो इन्हें वहाँ भी मिल जाती है, जहाँ से ये आई हैं किंतु कैरियर व कैरेक्टर की आध्यात्मिक जुगलबंदी इन्हें इस छात्रावास जैसी अन्यत्र अप्राप्य होती। तमाम प्रांतों की, तमाम धर्मों की, तमाम भाषा-भाषी छात्रायें एक साथ रहते हुए संपूर्ण भारत का अनोखा प्रतिनिधित्व करती हैं। इनके अभिभावकों ने इन्हें सैकड़ों मील दूर पढ़ने भेजकर जो साहस किया है, वह सउद्देश्य, दूरदृष्टि संपन्न और सफल आकांक्षी है।

शक्ति निकेतन का अनुशासन किसी फौजी अनुशासन से कम नहीं है। किंतु इस अनुशासन में पारस्परिकता का जो आस्वादन है और आत्मीयता की जो ऊष्मा है, वह इस अनुशासन को अत्यंत अनुकूल, सहज और प्रिय बना देती है। बच्चियाँ अपने सारे कार्य स्वयं संपन्न करती हुई आत्मनिर्भरता का ऐसा पाठ पढ़ती हैं जो जीवन में कभी परावलंबी नहीं बनने देता। ब्रह्म मुहूर्त में 3.30 बजे उठकर योग करना, आध्यात्मिक ज्ञान श्रवण करना, सुबह 8 बजे तक मौन का अभ्यास करना, मौन में स्कूल जाना, नियमित स्वाध्याय पठन-पाठन करना, सादगी और स्वच्छता पर ध्यान देना, ज़िम्मेवारी से ईश्वरीय सेवा करना, इनकी दिनचर्या का अभिन्न अंग है। इसके साथ ही यहाँ भौतिक कलाओं जैसे पाककला, चित्रकला, संगीतकला, नृत्यकला, गायन, वादन, अभिनय, निबंध, भाषण, नाटक, कविता, वाद-विवाद, गृहसज्जा, पेन्टिंग, दूरभाष, स्वागत प्रबंधन, मेहमाननवाज़ी आदि का प्रशिक्षण दिया जाता है। उन्हें बोल तथा आचरण में मृदुता, प्रसन्नता और मितभाषी बनना सिखाया जाता है।

शक्ति निकेतन अक्खड़, अल्हड़, अनुशासनहीन कन्याओं का जमावड़ा नहीं। यह गुणों व शक्तियों का ऐसा लघु मधुकेन्द्र है जहाँ सहज जीवन जीते हुए, ज़रूरी पढ़ाई-लिखाई करते हुए विश्व विद्यालय की आस्थाओं व आध्यात्मिकता का पाठ, यहाँ के वातावरण, गतिविधियों और वरिष्ठ संगिनियों के साहचर्य से वे पढ़ लेती हैं। इस पाठ में नैतिकता, मानवीयता और सार्थक जीवन जीने की सारी कलाओं का सहज समावेश

होता है। इन दिनों पाये जाने वाले दूषित वातावरण में कन्याओं को सक्षम एवं सच्चरित्र संपन्न बनाना असामान्य कार्य है लेकिन शक्ति निकेतन का यह सौभाग्य ही है कि इसकी अभूतपूर्व योग्य साधिकाओं, समर्पणशील, वरिष्ठ मार्गदर्शिकाओं ने कर्मठता एवं त्यागशीलता से इस असंभव कार्य को सहज संभव कर छात्रावास को उल्लेखनीय बना दिया है। ब्रह्माकुमार ओमप्रकाश भाई जी ने जिन कल्पनाओं और आकांक्षाओं से 28 वर्ष पूर्व यह छात्रावास प्रारंभ किया होगा, मैं सोचता हूँ, छात्रावास की उपलब्धियाँ उससे कई गुणा आगे निकल गई हैं। समर्पणशील शिक्षिकाओं एवं शक्ति निकेतन की समस्त बच्चियों को मेरी मंगलकामनाएँ!

यहाँ कश्मीर से कन्याकुमारी तक संपूर्ण भारत के लगभग 24 प्रांत एवं अन्य देश नेपाल, श्री लंका की लगभग 150 कन्याएँ निवास करती हैं। यहाँ छठी कक्षा से लेकर ग्रेज्युएशन तक की कन्याएँ अध्ययनरत हैं। इस सत्र में छात्रावास का परीक्षा परिणाम सर्वोत्कृष्ट रहा। सर्वाधिक कन्याओं ने विद्यालयों तथा महाविद्यालयों में प्रथम, द्वितीय स्थान प्राप्त किये।

छात्रावास में नई कन्याओं के प्रवेश हेतु जनवरी से अप्रैल माह तक संपर्क कर सकते हैं। प्रवेश की प्रक्रिया मई, जून माह से प्रारंभ हो जाती है।

अधिक जानकारी हेतु संपर्क करें –
बी.के.करुणा
दिव्य जीवन कन्या छात्रावास
ओमशांति भवन, न्यू पलासिया,
33/4, गेट नं. 2,
इंदौर (म.प्र.) – 452001
फोन नं. 0731- 2531631
मो. 9425316843
फैक्स : 0731-243444
ई-मेल : shaktiniketan@gmail.com
shaktiniketan.ind@bkivv.org

संसार को क्या दे रहे हैं आप?

आज के समाज को क्या चाहिए? सुख और शान्ति। किसी से भी पूछ लीजिए, गरीब या अमीर से, शहरी या ग्रामीण से, सभी का एक ही उत्तर है कि जीवन में शान्ति और सुकून चाहिए। अब दूसरा एक प्रश्न है, आज का मानव संसार को दे क्या रहा है? आज का मानव संसार को दो या चार बच्चे देकर संसार से कूच कर जाता है। फिर वे बच्चे भी सुख-शान्ति माँगने वालों की लाइन में लग जाते हैं।

पुनः एक सवाल है कि मानव माँगता है सुख-शान्ति पर देता है कुछ और, तो क्या सुख-शान्ति की इच्छा पूर्ण होगी? मान लो, कोई सफाई की कामना करे और देवे गंदगी तो क्या लक्ष्यसिद्धि होगी? समाज का बहुमत, समाज में बच्चे बढ़ाने में लगा है परंतु सुख-शान्ति बढ़ाने में कितने लोग लगे हैं? गिनती के लोग। चाहने वालों की लम्बी कतारें और देने वाले गिनती के, तो क्या मांग और पूर्ति में संतुलन हो पाएगा? नहीं ना! मांग बढ़ जायेगी और पूर्ति कम, तभी तो आज सुख-शान्ति के लिए फैले हाथ, सिमटने का नाम नहीं ले रहे हैं। अत: समय की माँग है कि हम सब जितना समय, शक्ति, धन इस संसार में मानवों की वृद्धि में लगा रहे हैं, उसे बचाकर मानव की सुख-शान्ति की वृद्धि में लगाएँ। इसके लिए अपने अंदर बच्चों जैसा भाव पैदा करें। निर्दोष भाव पैदा करें। अपने को परमात्मा का बच्चा समझ उनसे सुख-शान्ति का जन्मसिद्ध अधिकार प्राप्त करने में अपनी शक्ति, समय लगाएँ। जब हम ही बच्चे बन जायेंगे तो सुख-शान्ति का एहसास स्वत: करने लगेंगे। कहा जाता है, जो बच्चा बन जाता है वह विकारों से, दुख-अशान्ति से स्वत: बच जाता है। यह समय है बच्चा बनने का, न कि बच्चों की भीड़ बढ़ाने का। ❖

आहार और विचार

• ब्रह्माकुमार विजय गुप्ता, जयगाँव

मनुष्य हर पल नाना प्रकार के विचारों से घिरा रहता है। अगर हम पैन-कापी लेकर मन में उठते हुए विचारों को लिखने बैठ जायें तो हैरान हो जायेंगे कि यह हमारे भीतर क्या चल रहा है! अनवरत विचारों की भीड़ हमारे तन और मन को उत्तेजित करती रहती है। 'Body is present, Mind is absent', इस कहावत के अनुसार हम खुद के इन विचारों के प्रति सोये-सोये रहते हैं और विचारों से घिरे हम हर कर्म यंत्र की भाँति करते चले जाते हैं। इस भीड़ पर नियंत्रण न होने के कारण ही हम बहुत दुखी, परेशान, तनावग्रस्त, बेचैन व ब्लडप्रेशर से ग्रसित हैं तथा हमारी शांति भंग हो गई है।

विस्तृत है आहार का क्षेत्र

मानवात्मा मूल स्वरूप में शान्त और शुद्ध है परन्तु इस सत्य का ज्ञान न होने के कारण अशान्त हो जाती है। वर्तमान समय स्वयं परमात्मा पिता, आत्माओं को आत्म-स्वरूप में टिकने की विधि सिखा रहे हैं। तो आइये, हम अपने ही शान्त स्वरूप का अनुभव करें, अपने विचारों के प्रति जागें, होशपूर्वक अपने भीतर चलने वाले विचार प्रवाह को देखें। जैसे ही हम अपने विचारों को साक्षी होकर देखना शुरू करेंगे, एक अद्भुत घटना घटेगी – विचार शांत-शांत होते चले जायेंगे। विचारों को साक्षी होकर देखने और उन्हें सही दिशा देने की यह क्रिया अति सूक्ष्म है। इस सूक्ष्म क्रिया को प्रभावी बनाने के लिए एक अन्य महत्त्वपूर्ण बात है हमारा आहार। कहा भी गया है, 'जैसा आहार, वैसे विचार।' आहार का क्षेत्र बहुत विस्तृत है। **केवल मुख से खाया जाने वाला खाद्य ही नहीं, किसी भी कर्मेन्द्री से हम जो कुछ भी ग्रहण करते हैं, वह आत्मा के लिए आहार ही है। आहार का मतलब है बाहर से चीज़ों को अंदर ले जाना।** आँख, कान, त्वचा आदि सभी इंद्रियों से हम चीज़ों को अंदर ले जाते हैं। कई पदार्थ आहार रूप में लिए जाने पर उत्तेजना पैदा करते हैं जैसे, शराब, माँस इत्यादि। इन्हें ग्रहण करना हानिकारक है लेकिन जब हम वासनाग्रस्त आँखों से कुछ देखते हैं तो वह भी हमारे संकल्पों को अस्थिर कर देता है। यदि कोई व्यक्ति तीन घण्टा काम विकार, हिंसा, मारधाड़ से भरपूर फिल्म देखता है तो वह एक तरह का गलत आहार आँखों के द्वारा अंदर ले जा रहा है। इसका परिणाम क्या होगा? रात को ऐसे गन्दे सपने और दिन में खराब विचार आयेंगे जो चित्त को उत्तेजित कर उसे ग़लत कार्य करने की ओर प्रवृत्त करेंगे। जब हम उत्तेजनाकारी गीत सुनते हैं तो कान के द्वारा आत्मा उन तरंगों को आत्मसात् कर रही होती है अर्थात् गलत तरंगों रूपी कचरा आत्मा खा (ग्रहण) रही होती है।

सूक्ष्म कचरा

सड़क पर चलते समय पता नहीं आँखें क्या-क्या देखती हैं। किसी भी प्रकार का पोस्टर, फिल्म का विज्ञापन, अश्लील-अर्धनग्न चित्र – लोग इन सभी को पढ़ डालते हैं। आश्चर्य है! लोग क्यों मेहनत कर रहे हैं पढ़ने की! क्या पढ़ने का पैसा मिलने वाला है उन्हें? अखबार भी पढ़ेंगे तो सम्पादकीय से लेकर मार-काट, चोरी, उठाईगिरी, रिश्वत आदि की छोटी से छोटी घटनायें – सब कुछ दिल में उड़ेल लेंगे। यह सब गलत आहार, जो हम अनजाने में या जानबूझकर लेते हैं, इस पर थोड़ा ध्यान दें तो पता चलेगा कि हम कितना जहर अंदर भर रहे हैं! **जब पेट में कंकड़-घास नहीं डालते तो बुद्धि में कचरा क्यों डालते हैं? व्यर्थ संकल्प आत्मा के लिए कचरा ही तो हैं। उनसे मुक्त होना ज़रूरी है। व्यर्थ संकल्पों का तूफान अनेक प्रकार का नुकसान करता है।** परमात्मा ने हमें बुद्धि प्रदान की है तो हमें चेक करना है कि कहीं

मेरे अन्दर कुछ ग़लत तो नहीं चल रहा है। ध्यान रहे, पेट में डाले गये तामसिक भोजन से भी ज़्यादा नुकसान पहुँचाता है यह व्यर्थ विचार रूपी सूक्ष्म कचरा।

दुविधाओं से मुक्त करेगा राजयोग

राजयोग का नियमित अभ्यास हमारे विचारों को स्वच्छ करेगा। हम दुविधाओं से मुक्त होते जायेंगे। अमृतवेले चार से पौने पाँच बजे तक का समय ब्रह्ममुहूर्त माना जाता है। इस शुभ समय में, सहज आसन पर स्थिर बैठ जायें। भृकुटी में मन को टिकायें, वहाँ श्वेत प्रकाश का अनुभव करें। अनुभव करें – ''एक दिव्य सफेद ज्योति वहाँ प्रकाशित है। उस ज्योति की किरणें अंत:करण को प्रकाशित और शुद्ध कर रही हैं। विचारों में दिव्यता भर रही है। विचार शांत हो रहे हैं। मैं आत्मा शरीर से अलग और हल्की हूँ। मैं शान्त, शुद्ध और शक्ति स्वरूप हूँ; तेज स्वरूप हूँ; परमात्मा पिता मुझमें शक्ति भर रहे हैं। मैं दिव्य शक्ति की धनी हूँ।'' कुछ दिन लगातार अभ्यास करने से दिव्य अनुभव प्राप्त होने शुरू हो जायेंगे। एक अवस्था ऐसी आयेगी, लगेगा कि आनन्द बरस रहा है और मैं आनन्द की तरंगों में भीग कर आनन्द स्वरूप हो गया हूँ। ❖

पवित्रता ही सुख-शांति की जननी है

ब्रह्माकुमार कालूराम, टोंक

'**द**या धर्म का मूल है, पाप मूल अभिमान, तुलसी दया न छोड़िये, जब तक घट में प्राण' – इस दोहे में धर्म की जड़ दया को और पाप की जड़ अभिमान को बताया गया है। अभिमान अर्थात् स्वयं को देह समझना। देह समझने से देह के धर्म, देह के पदार्थ, देह के संबंध याद आते हैं और ये याद आने से ही कोई को तन का, कोई को धन का, कोई को जन का और कोई को पद का अभिमान पैदा होता है। इनको मिटाने के लिए देह का अभिमान समाप्त कर स्वयं को आत्म-अभिमानी बनाना पड़ेगा। आत्म-अभिमानी ही पवित्र रह सकता है और पवित्रता ही सुख-शांति की जननी है।

पवित्रता अर्थात् मन, वचन, कर्म, संबंध-संपर्क में स्वच्छता रखना। पवित्रता के कारण ही बच्चे को महात्मा के समान माना जाता है। पवित्रता के कारण ही कन्या को देवी के रूप में पूजा जाता है। पवित्रता ही संत महात्माओं को इतना ऊँचा स्थान दिलाती है और पवित्रता ही देवताओं का गायन और पूजन कराती है।

जहाँ पवित्रता होती है, वहाँ सुख-शान्ति-संपत्ति अपार रहती है। पवित्रता का बल बहुत बड़ा बल है जो हमें मायावी विकारों से बचाकर रखता है। पवित्रता के बल से ही हम अपना संबंध परमात्मा पिता से जोड़ सकते हैं, उनसे मिलन मना सकते हैं। परमात्मा पवित्रता का सागर है तो उनसे मिलन मनाने के लिए स्वयं को भी उस पिता के समान पावन बनाना होता है। व्यक्ति की पवित्रता की शक्ति उसके चेहरे व चलन से दिखाई देती है। पवित्रता ही सच्ची सुन्दरता है। वर्तमान जीवन में पवित्रता को धारण करने से भविष्य सतयुग में शरीर भी कंचन समान मिलता है। पवित्रता की शक्ति न होने के कारण ही आज हर प्रकार के दुख-अशान्ति का सामना करना पड़ रहा है। ज्यों-ज्यों आत्मा पवित्र बनती जाती है, त्यों-त्यों सुख-शान्ति से संपन्न बनती जाती है। सतयुग में पवित्रता थी तो सुख-शान्ति-संपत्ति सब कुछ प्राप्त था। कलियुग में पवित्रता न होने के कारण ही सुख-शान्ति समाप्त हो गई है। अत: भगवान की श्रीमत है, इस अंतिम जन्म में पवित्र बनो, योगी बनो। ❖

हनुमान जयंती पर विशेष ..

अध्यात्म की नज़र से हनुमान जी

• ब्रह्माकुमार दिनेश, हाथरस

भारत के आध्यात्मिक और पौराणिक साहित्य में अनेकानेक वीर, धीर, सशक्त, दिव्य और चमत्कारिक चरित्रों का वर्णन हुआ है। इनमें से अनेक चरित्रों की, प्रतिदिन के जीवन में मनुष्य इष्ट मानकर पूजा-अर्चना करता है, उनसे शक्ति और प्रेरणा ग्रहण करता है। उनमें से एक बहुत ही प्रसिद्ध चरित्र है श्री हनुमान जी का, जो ईश्वर-भक्ति, ईश्वर-सेवा और ईश्वर के प्रति वफादारी के साक्षात स्वरूप हैं। भारत के अधिकतर घरों में उनकी मूर्ति प्रतिदिन पूजी जाती है और भारत के कोन-कोने में भी उनके अनगिनत मंदिर बने हुए हैं। जन-जन के दिलों में स्थान पाने वाले हनुमान जी की पूजा-अर्चना करना उनके प्रति श्रद्धा का एक पहलू है लेकिन उनके चारित्रिक गुणों से प्रेरणा लेना, उनके गुणों को जीवन में आत्मसात् करना सर्वथा दूसरा पहलू है। आइए, आज ऐसे महान चरित्र के चारित्रिक गुणों के प्रकाश से हम स्वयं को प्रकाशित करने का प्रयास करें –

जन्म – हनुमान जी का जन्म पूर्णमासी को माना गया है। पूर्णमासी सोलह कलाओं से संपूर्णता और संपूर्ण प्रकाश का प्रतीक है। ऐसा प्रकाश जो केवल स्व के लिए नहीं है लेकिन संपूर्ण विश्व को प्रकाशित करने के लिए है। परमात्मा के साथ जिन आत्माओं को विश्व के उद्धार की सेवा करनी होती है, उनका जन्म 'सर्वजन हिताय सर्वजन सुखाय' होता है, इसलिए पूर्णमासी के दिन के जन्म का रहस्य भी यही है कि उनका आत्मिक प्रकाश संपूर्ण विश्व के हित के लिए है।

नाम – पौराणिक चरित्रों के नाम अपने अंदर, अपने गुणों को समाहित किये हुए हैं। यूँ तो हनुमान जी के अनेक नाम हैं परन्तु सर्वाधिक प्रचलित 'हनुमान' शब्द का अर्थ है – मान का हनन करने वाला अर्थात् मैंपन का हनन करने वाला। जिसने 'मैंपन' और 'मेरेपन' का हनन कर दिया, वही ईश्वर का सच्चा सेवाधारी बन सकता है।

बाल सुलभ क्रियाएँ – किंवदन्ती है कि हनुमान जी ने बचपन में सूर्य को निगल लिया था। हम सब जानते हैं कि पृथ्वी, चंद्रमा, सूर्य इत्यादि ग्रह-नक्षत्र मानव जीवन के संचालन के आधार हैं। वैज्ञानिकों ने चंद्रमा पर झण्डा लहराकर उसके बारे में सभी यथार्थ जानकारियाँ हासिल कर ली हैं। अतः

ये बातें तो सबकी समझ में आ चुकी हैं कि सूर्य, चंद्रमा कोई देव प्राणी नहीं हैं। आध्यात्मिक भाषा में भगवान को भी ज्ञान-सूर्य कहा जाता है। जैसे यह सूर्य संपूर्ण जगत को रोशनी देता है, इसी प्रकार ज्ञान-सूर्य परमात्मा भी संपूर्ण जगत के पालक, रक्षक और मार्गदर्शक हैं। वो ज्ञान के सागर और सर्व सकारात्मक गुणों के सागर हैं अतः लाखों डिग्री तापमान वाले और पृथ्वी से कई गुणा बड़े आग के अंगारे को मुख में निगलने की बात नहीं बल्कि आध्यात्मिक जीवन की शैशवावस्था में ही ज्ञानसूर्य परमपिता परमात्मा शिव के समस्त गुण, ज्ञान, शक्तियों को आत्मसात् कर लेने की यह बात है।

शाप द्वारा शक्ति विस्मरण – ज्ञानसूर्य परमात्मा के ज्ञान, गुण, शक्तियों को अपनी बुद्धि में समाहित

करने वाले हनुमान जी अनेक आध्यात्मिक शक्तियों से सुसंपन्न रहे लेकिन अपनी किसी भूल के कारण उन्हें यह शाप मिला कि समय आने पर वे अपनी शक्तियों को भूल जायेंगे और किसी के द्वारा याद दिलाये जाने पर वे शक्तियाँ जाग्रत हो उठेंगी। हम जानते हैं कि शाप देने का कार्य कोई श्रेष्ठ व्यक्ति नहीं कर सकता। शाप या बद्दुआ देने वाली तो माया है। माया अर्थात् पाँच विकार और माया का राज्य तो द्वापरयुग से शुरू होता है। इस युग के आते ही माया द्वारा शापित होकर यह श्रेष्ठ आत्मा अपनी शक्ति को विस्मृत कर देती है लेकिन द्वापर और कलियुग के बाद जब संगमयुग आता है और भगवान ब्रह्मा के तन में धरती पर अवतरित होते हैं तो ऐसी श्रेष्ठ आत्मा ईश्वर का संग पाकर माया के शाप से मानो मुक्त हो जाती है और उसे अपनी सर्व आध्यात्मिक शक्तियों की स्मृति आ जाती है जिसके बल से वह असंभव लगने वाली सेवाओं को भी ईश्वरीय सहायता से संभव कर पाती है।

समुद्र लांघ कर सीता को खोजने का अर्थ भी यही है कि कलियुग के अंत में ईश्वर प्रेमी आत्मायें कई समुद्र पार करके भारत से बाहर भी रह रही होती हैं। भिन्न भाषा, भिन्न धर्म, भिन्न संस्कृति के चंगुल में फँसी ऐसी आत्माओं को ईश्वरीय संदेश देने के लिए समुद्र लांघकर जाना एक बड़े साहस का कार्य है। हनुमान जी उसी साहस के प्रतीक हैं।

परम पवित्र – कहते हैं कि सीता की खोज में लगे हनुमान जी ने रावण के महल में सोई हुई स्त्रियों के मुखों को देखा तो उनके मन में विचार आया कि ऐसा ग़लत कार्य करके तू धर्मभ्रष्ट हो गया। इस पर उन्हें समझाया गया कि तुमने ईश्वर की आज्ञा पालन के उद्देश्य से इन पर नज़र डाली है, न कि काम विकार या दूषित दृष्टि-वृत्ति के कारण। पवित्रता की ऐसी मिसाल अन्यत्र दुर्लभ है। केवल स्थूल ही नहीं लेकिन अन्दर भावनाओं की पवित्रता के इस उच्च आदर्श के कारण हनुमान जी विशेष माननीय, पूजनीय और सम्माननीय हैं। ऐसी अखण्ड पवित्रता का पालन करने वाला ही, भगवान से बिछुड़ी आत्माओं को पुनः भगवान से मिला सकता है।

ईश्वरीय कृपा का पात्र – कहा जाता है कि सेवाधर्म बड़ा कठिन है। सेवाधर्म निभाते-निभाते व्यक्ति से यदि छोटी-मोटी भूल हो भी जाए तो भगवान उसकी ज़िम्मेवारी ले लेते हैं और बहुत युक्ति से अपने सेवाधारी के अहम् को समाप्त भी कर देते हैं। रामेश्वरम् में शिवलिंग की स्थापना के समय हनुमान जी का जो थोड़ा बहुत अहम था, वह भी भगवान ने उखाड़ दिया और वह आत्मा सचमुच अपने नाम के अनुरूप मान-शान से परे, मान को जीतने वाली हनुमान बन गई।

हनुमान जी के चरित्रों के लहराते हुए सागर में से कुछ अमृत बूंदों को ही हम यहाँ ले पाए हैं। इष्ट का उज्ज्वल चरित्र ही साधकों के जीवन को इत्र समान खुशबूदार और गुणवान बनाता है। आत्मा अमर है और उसके द्वारा किये जाने वाले महान चरित्र भी चिरंजीव ही रहते हैं। वर्तमान समय वही युग परिवर्तन की वेला है। भगवान, रावण के चंगुल में फँसी आत्मा रूपी सीताओं की खोज में धरती पर अवतरित हो चुके हैं। ऐसे समय हनुमान की तरह त्याग, तपस्या और सेवा को जीवन में धारण करके ईश्वरीय सेवा में मददगार बनने वाली आत्माओं का भगवान आह्वान कर रहे हैं। संसार की आत्मायें तो हुनमान जी को अष्ट सिद्धि और नवनिधि की पूर्ति की कामना हेतु स्वार्थवश याद करती हैं लेकिन समय की मांग है कि हम समय की नाजुकता को पहचान कर हनुमान जी से याचना करने की बजाय उन जैसे गुणों को धारण करके अनेक याचक आत्माओं की कामना पूर्ति करें। उनके गुणों की रोशनी से अपने जीवन-पथ को आलोकित करें। उनके समान ईश्वर प्रेम में रम जाएँ और उनके समान ईश्वर समर्पित होकर ईश्वर समान बन जाएँ।

❖

नारी की आध्यात्मिक.. पृष्ठ 1 का शेष

माँग में सिन्दूर भर लेती है जो कि एक साईन बोर्ड की न्यायीं काम करता है कि मैं एक पतिव्रता नारी हूँ। तब उसकी बुद्धि भटकती नहीं है। वह मर्यादा, लज्जा और नियम में रहती है। इस अवस्था में भारत की नारी तो एक प्रकार से तन-मन-धन, सर्वस्व-सहित पति की हो जाती है। गोया देह में रहते भी वह देह पर अपना अधिकार नहीं समझती, वह पति को प्रसन्न रखने ही में लगी रहती है; उसकी सेवा को साधती है। उसी पर न्योछावर-सी हुई होती है। वह ही उसके प्रेम का केन्द्र-बिन्दु होता है। उसे ही वह अपना एक बल, एक भरोसा मानती है। अत: नारी की यह स्वभाव-जन्य-वृत्ति मार्गान्तरीकरण से उसकी योग-साधना में बहुत ही मूल्यवान निधि सिद्ध होती है। नारी को तन-मन-धन से प्रभु पर समर्पित होना सहज है; उस प्रभु ही को 'एक बल एक भरोसे' के रूप में साधना सुगम है; उसे अपनी बुद्धि को सब ओर से समेट कर एक ही परमेश्वर रूप पति अथवा साजन में जुटाने में अधिक सुविधा होती है; उसे मन-मस्तिष्क में बिन्दु (ज्योतिबिन्दु) आत्मा की स्मृति का तिलक लगाने में सुविधा होती है। तन-मन-धन से प्रभु ही के प्रति समर्पित भाव ही तो सच्चा एवं सर्वश्रेष्ठ संन्यास है। यह संन्यास वह जंगल में जाये बिना ही कर सकती है।

माता-वृत्ति

फिर, बच्चों के प्रति माता का कैसा वात्सल्य होता है! वह उनके लिए कितना त्याग करती है! माँ के उस मातृत्व-जैसी चीज़ तो संसार में और कुछ है ही नहीं। वह अपने व्यक्तिगत स्वार्थों को ताक पर रखकर बच्चों तथा घर के दूसरे सदस्यों की सुख-सुविधा पर अधिक ध्यान देती है। वह स्वयं भूखी रहकर भी बच्चे की क्षुधा को तृप्त करना अपना परम कर्त्तव्य मानती है। वह अपनी नींद का, अपने आराम का भी विचार न करके दूसरों की सेवा में लगी रहती है। घर की धूरी, घर की स्थिरता का केन्द्र-बिन्दु वही तो होती है। अत: अपने इन स्वभाव-सुलभ गुणों – सेवा, त्याग, तपस्या, नि:स्वार्थता, स्नेह, उत्सर्ग इत्यादि को वह ज्ञान तथा योग का पुट देकर जगदम्बा बन, विश्व के कल्याण-कार्य में बहुत ही महत्त्वपूर्ण पार्ट निभा सकती है। नारी के पुत्र हो या न हो, उसमें 'माता-पन' का संस्कार तो होता ही है; वह स्वभाव से ही दूसरों की सुख-सुविधा का अधिक ध्यान करती है और अपना कम। उसमें स्नेह सदा होता ही है, वह कभी भी किसी का अमंगल, अहित अथवा अकल्याण नहीं सोचती। माता का यही स्वरूप ज्ञान और योग द्वारा निखार पाकर, तप कर, शुद्ध होकर, अलौकिकता पाकर, विश्व के कल्याणार्थ बहुत ही प्रभावशाली सिद्ध हो सकता है।

फिर, गृहणी का तो घर में ऐसा स्थान होता है कि उसे सभी का दुखड़ा सुनना पड़ता है – पति अपने मन के गुबार को वहीं आकर झाड़ता है, बच्चे भी उसी की गोद में आकर चैन लेते हैं, उसी के सामने अपनी परेशानियाँ अलापते हैं। अत: माता किसी ऐसी धातु से बनी होती है कि वह अपनी कठिनाइयों का भी सामना करती है, साथ-साथ दूसरों की बातें भी सुन कर उन्हें मन में समा लेती है और सभी को अपनी मृदुल वाणी से, प्यार और दुलार से, सहलाने वाली थपथपी से, उनके मन पर मलहम का काम करती है। यहाँ तक कि पत्नी को जीवन में बहुत बार, पति से भी मातृवत् व्यवहार करना पड़ता है। कन्या की अवस्था से लेकर ही उसमें सहानुभूति का गुण होता है; वह दूसरों का दुख हरने को उद्यत होती है। यह उसमें एक ऐसा कुदरती गुण है जो बहुत ही महान है। आज संसार में मनुष्य को इसी की ही तो परम आवश्यकता है। अत: नारी यदि

ईश्वरीय ज्ञान तथा सहज राजयोग की संजीवनी बूटी अपने हाथ ले ले तो वह जगत-भर के मनुष्यों को प्यार-मोहब्बत और दुलार देकर, उनके भी बुरे संस्कारों को मिटा कर, उनके जीवन को ज्ञान एवं योग के आनन्द से संजोने का महान कार्य कर सकती है।

भक्ति-भावना

हम यह भी तो देखते हैं कि हर मन्दिर में, गुरुद्वारे में, कथा-कीर्तन में, गिरिजाघर और सत्संग में माताओं-कन्याओं की ही संख्या अधिक होती है। इसका कारण यही तो है कि उनमें भक्ति-भावना अधिक है। इस बारे में प्रोफेसर फ्रेडरिक ने 'विश्वामित्र' पर जो शोध कार्य किया, उसके आधार पर लिखा है कि नारियाँ, पुरुषों की अपेक्षा अधिक संख्या में दैवी स्वराज्य और ईश्वरीय शासन में विश्वास करती हैं; वे ऐसा भी मानती हैं कि परमात्मा है और कि चारित्रिक मूल्यों का उद्‌गम किसी मनुष्य से नहीं बल्कि परमात्मा से ही हुआ है। कहने का भाव यह है कि महिलाएँ ईश्वर और उसके कर्त्तव्य में अधिक आस्थावान होती हैं।

बात यह भी है कि नारी में, पुरुष की अपेक्षा दया की भावना और भय किंचित अधिक होता है। अत: वह पाप से तथा प्रभु के दण्ड से अधिक भय करती है। इसलिए वह प्रभु ही की शरण लेना चाहती है ताकि वह उसे पाप और संताप से बचाये।

फिर, नारी का प्रतिदिन की आवश्यकताओं और उतार-चढ़ाव से गहरा वास्ता पड़ता है। अत: वह यथार्थवादी तथा व्यवहारिक होती है परंतु साथ-ही-साथ वह आदर्शवादी भी होती है। वह भूख और प्यास की तृप्ति की आवश्यकता को पहचानते हुए भी, जीवन में उससे भिन्न किसी उच्च आदर्श के प्रति सचेत होती है। इसलिए भी वह सत्संगों में अधिक संख्या में उपस्थित होती है जबकि पुरुष, रोटी, कपड़ा, मकान और संसार के बखेड़ों को इतना ज्यादा महत्त्व दे बैठता है कि सर्वोत्तम पुरुषार्थ से वंचित रह जाता है।

पुनश्च, नारी शिव के अतिरिक्त सौन्दर्य के प्रति भी अधिक झुकी रहती है। उसमें सौन्दर्य-बोध अधिक है। नमूना, रूप, रंग इत्यादि की सही पहचान जितनी नारी में होती है, उतनी पुररुष में नहीं होती। वह जिसे हाथ लगाती है, उसे संवारती ही है, इसलिए 'नारी' के हाथ में संवारने तथा सजाने की कला का महत्त्व है। इसी भूमिका को लिए हुए वह परमात्मा को, जो कि शिवं के साथ-साथ परम सुन्दरं भी है, पाने का यत्न करती है।

नारी में प्रेम तो अगाध है और प्रेम ही योग का मुख्यतम साधन है अथवा मूल मंत्र है। नारी का बच्चों में तथा पति में अपार प्रेम होता है, तभी तो वह उन पर अपना जीवन भी न्योछावर करने को तैयार होती है। यही प्रेम वह प्रभु में स्थिर करके अत्यंत महान योगिनी बन जाती है।

नारी द्वारा स्वर्ग का द्वार खोला जा रहा है

इस प्रकार, हम देखते हैं कि बीज रूप में नारियों में अनेकानेक ऐसी दिव्यताएँ, शक्तियाँ अथवा योग्यताएँ हैं जिन्हें सींचने से वह आध्यात्मिक शक्ति एवं दिव्य गुणों से इतनी तो महान बन सकती हैं कि सारे जगत को पलट कर रख सकती हैं।

अत: परमपिता परमात्मा शिव जिन्हें 'अर्द्ध-नारीश्वर' भी कहा गया है और 'माता एवं पिता' भी, उन्होंने प्रजापिता ब्रह्मा के माध्यम से कन्याओं-माताओं को सहज रीति से ईश्वरीय ज्ञान, राजयोग तथा दिव्य गुणों की शिक्षा देकर शक्तिरूपा बना दिया है। अब यह अहिंसक शिव-शक्ति सेना, यह श्वेत-वस्त्र धारिणी ब्रह्माकुमारियाँ ही नर-नारी में समान रूप से मनोपरिवर्तन लाकर, उनके संस्कारों को पवित्र बनाकर सतयुग की स्थापना कर रही हैं। दूसरे शब्दों में, 'नारी नरक का द्वार है' वे इस उक्ति को ग़लत सिद्ध करती हुई स्वर्ग का द्वार खोल रही हैं। प्रत्यक्ष को प्रमाण की क्या आवश्यकता है?

❖